प्रस्तावः।

हर्षका विषय है कि आज हम इस पुस्तक का तीसरा संस्करण लेकर उपस्थित होते हैं। इन संस्करणोंमें उत्तरोत्तर इसमें प्रश्नों की संख्या बढ़ाई गई है थोड़े ही दिनों में इसके तीन संस्करण होने से यह निश्चय है कि पाठकों ने इसकी कदर की है। अभिप्राय यह है कि संक्षेप से सनातनधर्मी लोगों को ज्ञात हो जावे कि सनातनधर्म के वेदानुकूल मन्तव्य अत्यन्त पुष्ट तथा सर्वथा अखण्डनीय हैं। ये सिद्धान्त किसी भी प्रकार के कुतर्कों से कटने वाले नहीं हैं। इनपर आर्य समाजी आदि लोग जो कुछ प्रहार करते वा खण्डन करते हैं वह उनकी भूल है। इसमें छपे प्रश्नोंका सन्तोषजनक समाधान कोई आर्यसमाजी नहीं कर सकता; कुछ न कुछ कह देना दूसरी बात है जैसे बालू की भीत, धोखे की टट्टी बहुत दिन तक खड़ी नहीं रह सकती। वैसे ही ईश्वरादि वेदोक्त विषयों में आर्यसमाजियों की धींगा धींगी अब बहुत दिन नहीं चल सकती। आर्यसमाजियों का मत भी मिथ्या होने से अब बहुत दिनों तक संसार को धोखा नहीं दे सकता। इस लिये आ० समाजियों को भी अब सचेत होकर ऐसा मार्ग पकड़ना चाहिये कि जिस पर चलने से सुख प्राप्ति की आशा हो।

इस प्रश्नावली में अभी अनेक विषय छोड़ दिये गये हैं तथा जिन विषयों में प्रश्न उठाये गये हैं उन में भी हद् नहीं की गई है। इसलिये ग्राहकोंने यदि इस पुस्तकका विशेष आदर किया तो सम्भव है कि १००० प्रश्न इसमें आगे मुद्रित कराये जावें। सो यह बात ग्राहकों की रुचि पर निर्भर हैं। अभी यह पुस्तक शीघ्रता में छपा है इस से इस में कुछ भूल वा अशुद्धि वा कुछ त्रुटि जान पड़े तो पाठक लोग हमें उसकी सूचना देवें॥

निवेदक—

पं० भीमसेन शर्म्मा मिश्र

सम्पादक ब्राह्मणसर्वस्व इटावा।

आर्यमत निराकरण प्रश्नावली।

१-ईश्वरविषय।

१-ईश्वर वा परमेश्वर क्या वस्तु है? उस के होने में अखण्डनीय युक्ति क्या है?।

२-ईश्वर को चेतन और सर्वत्र व्यापक मानते हो तो चेतन का लक्षण बताओ। उस की चेतनता में क्या प्रमाण है?।

३-वह प्रत्यक्ष है वा परोक्ष, यदि प्रत्यक्ष कहो तो दिखाओ वह कहां है। यदि परोक्ष कहो तो (त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि०) इस मन्त्रमें उस को प्रत्यक्ष क्यों कहा है?। अथवा यही बताओ कि ईश्वरको प्रत्यक्ष क्यों कहा। और प्रत्यक्ष का क्या अर्थ है?।

४-सच्चिदानन्द के सत् चित् आनन्द स्वरूपों से उस का अनेक रूप होना सिद्ध क्यों नहीं हुआ। क्या तुम ईश्वर को अनेक रूप मानते हो वा एक ही रूप है॥

५-यदि एक ही रूप कहो तो सच्चिदानन्दादि कहना नहीं बनेगा। और अनेक रूप कहो तो बहुरूपिया मानना पड़ेगा, तब उस के साकार सगुणादि रूपों को मानना क्यों नहीं पड़ेगा? (इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपईयते) इत्यादि श्रुतियोंसे भी साफ २ उस का बहुरूप होना सिद्ध है। इस का सत्य उत्तर क्या है?॥

६-यदि ईश्वर को सत्-नाम विद्यमान कहो तो बताओ कहां मौजूद है। उस के मौजूद होने में सुबूत क्या है?॥

७-यदि चित् रूप ईश्वर सबमें है तो जड़ोंमें चेतनता क्यों नहीं प्रतीत होती दीपक के होते भी अन्धकार ही रहे तो दीपक का होना कैसे सिद्ध होगा?। इससे तुम्हारे मतमें ईश्वरका चिद् रूप होना खण्डित क्यों नहीं हुआ। अर्थात् अवश्य खण्डित है॥

८-क्या ईश्वर दुःख स्थानों में भी आनन्दस्वरूप से व्यापक है! यदि ऐसा है तो वहां २ की दुःख पीड़ा बाधा क्यों नहीं मिटती। यदि नहीं मिटती तो उस के आनन्दस्वरूप से व्यापक होने में प्रमाण ही क्या है?। यदि कहीं खास जगह वा लोक में आनन्द स्वरूप है तो सर्व व्यापक क्यों मानते हो?।

९-क्या तुम ईश्वर को सगुण निर्गुण दोनों प्रकार का मानते हो वा एक, यदि सगुण भी मानते हो तो उस का साकार होना क्यों नहीं मानते?। केवल निराकार में गुणों का समावेश किस युक्ति से करते हो?। यदि उस में गुणों की योजना हो सकती है तो (यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह) इस श्रुतिमें मन वाणी का निषेध क्यों किया?।

१०-जब निराकार में मन वाणी का पहुंचाना असम्भव है तो तुम उस का मन से ध्यान तथा वाणी से स्तुति प्रार्थना कैसे वा क्यों करते हो? जब वह नहीं सुनता तो तुम्हारी स्तुति प्रार्थना अरण्य रोदन क्यों नहीं हुआ?।

११-ईश्वर के निराकार होने में कुछ भी प्रमाण नहीं है। यदि वेद का प्रमाण कहो तो दिखाओ कि वेद में ईश्वर को निराकार पद से कहां वर्णन किया है। यदि अन्य शब्दार्थों से कहो तो वेद से उस का साकार होना भी क्या स्पष्ट सिद्ध नहीं हो जाता?॥

१२-यदि कहो कि जैसे एक ही वस्तु परस्पर विरुद्ध दो प्रकार के गुणों वाला नहीं हो सकता। वैसे ईश्वर भी साकार निराकार दोनों प्रकार का नहीं हो सकेगा। तो क्या अग्नि वायु जल इत्यादि एक २ साकार निराकार नित्य अनित्य दो २ प्रकार के नहीं हैं। क्या सब में व्यापक अग्नि नित्य तथा निराकार नहीं है? और क्या उसी के साथ प्रज्वलित अग्नि साकार नहीं हैं?। तब वैसे ही साकार निराकार दोनों प्रकार का ईश्वर क्यों नहीं हो सकता?।

१३—(उभयंवाएतत्प्रजापतिः-परिमितश्चापरिमितश्च० शतपथ कां० १४। अ० १। ब्रा० २। कं० १८)। इत्यादि शतपथ

श्रुति में परिमित से साकार और अपरिमित कहने से क्या ईश्वरका निराकार होना सिद्ध नहीं कर दिया है ? ।

१४—(शु० य० अ० ५ मं० १६ उभाहिहस्ता०) मन्त्र में जब स्वा० दयानन्दने भी दो हाथों वाला साकार ईश्वर वेदभाष्य में मान लिया है तो तुम केवल निराकार का झण्डा क्यों उड़ाते हो ? क्या दो हाथों वाला भी निराकार हो सकता है ? ।

१५—यदि अग्नि कभी कहीं भी प्रगट न होता तो क्या अग्निका व्यापक होना कोई मान लेता ? वैसे ईश्वर भी कभी कहीं किसी आकार में प्रकट न हो सदा निराकार ही रहे तो ईश्वर के होने में प्रमाण ही क्या है ? । तब क्या नास्तिकता न आवेगी ? ।

१६—क्या निराकार ईश्वर सृष्टि रचनादि कुछ भी काम कर सकता है ? । यदि हां कहो तो तुम व्यापक निराकार अग्निसे ही होम करना, भोजन पकाना तथा प्रकाश प्राप्ति क्यों नहीं कर लेते ? इन कामों के लिये दियासलाई और ईंधनादिक प्राप्ति के खर्च और परिश्रम क्यों करते हो ? ।

१७—क्या इस दृष्टान्त से निराकारसे कुछ काम न होना सिद्ध नहीं है ? । अथवा क्या तुम्हारे पास ऐसा कोई दृष्टान्त है कि जिस द्वारा निराकार से स्थूल कार्यों का होना सिद्ध हो सके ।

१८-जब तुम्हारा निराकारवाद प्रमाण और तर्कों से टुकड़े २ खण्डित हो जाता है तो साकार न मानने का हठ क्यों करते हो ? ।

१९—क्या तुम्हारे मतमें कोई ऐसा दृष्टान्त है कि जो निराकार हो वह सब दशा में निराकार ही रहे साकार कभी न हो सके ।

२०-यदि कहो कि दिग् देश काल, आकाश, ये सब सदा व्यापक निराकारही रहते हैं साकार कभी नहीं होते तो यह तुम्हारी प्रत्यक्ष ही भूल है । यदि दिशा व्यापक है तो पूर्व से आये हैं पश्चिम को जायेंगे, तथा अंगुली उठाकर बताते हो कि इधर उत्तर, इधर दक्षिण है यह कथन व्यापक में कैसे बनेगा ? । जब दिशा व्यापक हैं तो उत्तर दक्षिणादि दिशा सर्वत्र हुई, फिर इधर उत्तर

इधर दक्षिण मानने पर तुम्हारा व्यापकत्व मिथ्या क्यों नहीं है ? । और अपने व्यवहार को सत्य मानो तो दिशा को निराकार व्यापक मानना क्यों नहीं छोड़ते ? । यदि देश को व्यापक मानो तो किसी देश से आना और किसी में जाना यह कैसे कह सकोगे ? । यदि जा सकते हो तो वह व्यापक क्योंकर हुआ ? यदि कालको व्यापक मानो तो महाकल्प, कल्प, मन्वन्तर, चतुर्युगी, सत्ययुगादि, वर्ष अयन, ऋतु, मास पक्ष, तिथि, वार, दिन, रात, प्रहर, घड़ी, मुहूर्त इत्यादि काल के विभाग वा खण्ड क्योंकर मान सकोगे ? । यदि आकाश को व्यापक निराकार मानते हो तो हमारा घर यहां से यहां तक है इत्यादि व्यवहार कैसे बन सकेगा ? । क्योंकि भीतों से घेरे हुए मठाकाशका ही नाम तो तुमने घर माना है । यदि खण्डित किये आकाश का नाम घर नहीं मानो तो तुम्हीं बताओ कि घर क्या वस्तु है । क्या भित्तिपरिच्छिन्न मठाकाश से भिन्न किसी को घर मानोगे ? ।

२१-(आकाशस्य प्रदेशः) इस वात्स्यायन भाष्य न्याय के प्रमाण से क्या व्यापक आकाश का प्रदेश नाम भाग कहना नहीं बन सकता ।

२२-(निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिङ्गम्) इस वैशेषिक दर्शन के सूत्र से निकलना घुसना क्या आकाश का चिन्ह नहीं है ।

२३-क्या व्यापक निराकार आकाश से निकलना और उस में घुसना बन सकता है ? । और घर से निकलना और घर में घुसना दोनों सिद्ध हैं तो घर का नाम आकाश क्यों नहीं हुआ । तथा ऐसा घर व्यापक निराकार कैसे मानोगे ? ।

२४-जब दिशादि सब का साकार होना भी सिद्ध है तो ईश्वर के केवल निराकार होनेमें कौनसा दृष्टान्त बाकी रहा ? सो बताओ॥

२५-(सर्वेशरीरी प्रथमः) (तस्य पृथिवी शरीरम्) इत्यादि श्रुतियों में तथा (सोऽभिध्यायशरीरात्स्वात्) (असंख्या मूर्त्तय-स्तस्यनिष्पतन्ति शरीरतः) इत्यादि स्मृतियों में ईश्वर को शरीर वाला कहा है तो तुम किस प्रमाण से उस ईश्वर को शरीर रहित

मानते कहते हो ? । क्या इन प्रमाणों से ईश्वर का शरीर सिद्ध नहीं है ? क्या निराकार का शरीर हो सकता है ? ।

२६-यदि कहो कि (सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रण०) इस वेद मन्त्र में काय नाम शरीर का निषेध होने से हम उसे शरीर रहित मानते हैं तो बताओ कि जब शरीर नहीं तब उस में नाड़ी नसों का होना क्योंकर सम्भव था । जब वन्ध्या के पुत्र ही नहीं तो उस के गोरे काले होने की शङ्का कैसे होगी ? ।

२७-इस से काय नाम शुभाशुभ कर्मोंसे संचित शरीर ईश्वरका नहीं होता, काय शब्द चिञ् चयने धातुसे बना है । किन्तु ईश्वरका दिव्य अलौकिक शरीर होता है उस में नाड़ी नसों के बन्धन भी नहीं होते ऐसी व्यवस्था तुम क्यों नहीं मान लेते हो ? जिस में श्रुति स्मृतियों की संगति लग जाती है ॥

२८-क्या वेद में कहे स्वयम्भूः पद से स्वयं प्रकट होना ईश्वर का सिद्ध नहीं है । यदि है तो वैसा तुम क्यों नहीं मान लेते ? ।

२९-(स एवजातः सजनिष्यमाणः) इत्यादि वेदमन्त्रों से सिद्ध हैं कि वही ईश्वर प्रकट हुआ और वही प्रकट होगा तब तुम लोग उस के प्रकट होने में हठ क्यों करते हो ? ॥

३०-(प्रादुरासीत्तमोनुदः) मनु जी के इस कथन से भी जब परमेश्वर का प्रकट होना सिद्ध है तब तुम उस को साकार न मानने का मिथ्या हठ क्यों करते हो ? ॥

३१-आविर्भाव, प्रादुर्भाव, जायमान, जनिष्यमाण, प्रकट होना, क्या इत्यादि पदों का अर्थ कभी निराकार में कोई घटा सकता है । जब निराकार में इन्द्रियों की तथा मन की पहुंच ही नहीं होती तो प्रकट होना कैसे मान लोगे ? । जब ऊपर लिखे विचारानुसार परमेश्वर का साकार होना सिद्ध है तो तुम वैसा सत्यांश क्यों नहीं मानते ? ॥

३२-यदि कहो कि दिग् देश काल, आकाश, वास्तव में व्यापक निराकार हैं और कार्यसिद्धि मात्र के लिये उन में साकार की क-

ल्पना मात्र की जाती है । और कल्पना नाम मिथ्या का है तब साकार होना कल्पित नाम मिथ्या ठहरा । तब वैसे ईश्वर में भी साकार की कल्पना मिथ्या सिद्ध होने से परमेश्वरको निराकार मानना सत्य सिद्ध होगया । सो क्या ऐसा सिद्धान्त तुम लोग ठीक मान लोगे । यदि मानलो और अपना सिद्धान्त ऐसा प्रकट करो तो वेद में कल्पित काल विभागादि होने के तुल्य ईश्वर के साकार होने के प्रमाण भी वेद में मानने पड़ेंगे ॥

३३-जब अग्नि आदि सभी व्यापक निराकार कार्य सिद्धि के लिये ही साकार होते हैं । तो वैसे ही उत्पत्ति स्थिति प्रलयादि कार्यसिद्धि के लिये ही परमेश्वरका साकार रूप होना श्रुति स्मृति पुराणादि से वा युक्ति से सिद्ध सभी आस्तिक विद्वान् लोग सदा से मानते हैं और जिस कल्पना से कार्यसिद्धि हुई वह स्वांश में चरितार्थ होने से सार्थक कल्पना है निरर्थक नहीं है । वेद में कल्पित असत् के वाचक पदों से भी जिस में कल्पना हुई उसी सद्वस्तुका बोध कराया जाता है इस से वेद सदा ही सत्प्रतिपादक माना जाता है । सारांश यह निकला कि उत्पत्ति स्थिति प्रलयादि सम्बन्धी कोई भी काम निराकार से कदापि सिद्ध नहीं हो सकता कि जैसे निराकार व्यापक अग्नि से भोजन पकाना आदि नहीं हो सकता इसी लिये परमेश्वरका साकार होना श्रुति स्मृति पुराणादिके प्रमाणों से तथा युक्तियोंसे सिद्ध माना जाता है।

जीव विषय ।

३४-हे आर्यसमाजी ! आप के मत में जीव क्या वस्तु है । अर्थात् चेतन है वा जड़ है । यदि जड़ कहो तो इच्छा द्वेष सुख दुःखादि जड़ में नहीं हो सकते । यदि चेतन कहो तो वह चेतनता ईश्वर से विलक्षण कैसे है ? ।

३५-क्या मिट्टी जलादि के समान जीव-ईश्वर में भेद है । यदि ऐसा मानो तो दोनों का चेतन होना कैसे सिद्ध करोगे ? । यदि

वापी कूप तालाब नदी समुद्रका सा भेद मानो तो जल में रस तथा वर्णादिका भेद औपाधिक मानना पड़ेगा जलत्व सामान्यांशमें वापी आदि का जल एक ही है। वैसे चेतनत्व सामान्यांश में जीवेश्वर का भी अभेद क्या मानोगे ?।

३६-जब जड़ चेतन दो ही मुख्य भेद हैं तो जैसे जड़त्व सामान्यांश सब जड़ों में एकसा रहेगा वैसे ही चेतनत्व सामान्य भी अभिन्न क्या नहीं मानोगे और कैसे नहीं मानोगे ?।

३७-जलत्व सामान्य के तुल्य जब चेतनत्व सामान्य से जीवेश्वर का वास्तविक अभेद तथा औपाधिक भेद तुम को मानने पड़ा तो तीन पदार्थों का अनादि होना मत कैसे सिद्ध होगा ?॥

३८-जब तुम्हारे पहिले नियम के अनुसार सब का आदि मूल तुम ने ईश्वर को मान लिया तो तुम्हारे एक मन्तव्य से तुम्हारा तीन अनादि मानना मत क्यों नहीं कट गया ? क्या यह वदतोव्याघात दोष नहीं है ॥

३९-तुम्हारे मत में जीव का लक्षण क्या है। यदि (वालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्य च) इस श्रुति के अनुसार वाल के अग्रभाग के दश हजार टुकड़ों में एक टुकड़े की बराबर सूक्ष्म जीव होना मानो तो बताओ कि वह परिच्छिन्न है वा अपरिच्छिन्न है ॥

४०-यदि परिच्छिन्न मानो तो जीव नाश वाला अनित्य ठहरेगा। क्या संसार में परिच्छिन्न सभी पदार्थ अनित्य नहीं है ? यदि जीव अनित्य ठहरा तो शरीर के साथ ही नष्ट हो जायगा। तब इस जन्म के किये शुभाशुभ कर्मों का फल कौन भोगेगा ? तब क्या ऐसी दशा में नास्तिकवाद न आजायगा ?।

४१-यदि अपरिच्छिन्न मानो तो प्रत्येक जीव व्यापक हुआ। तब दोनों व्यापक दोनों चेतन जीवेश्वर में भेद कैसे सिद्ध करोगे तब क्या अभेद मान लोगे ?।

४२-तुम लोग जीव ईश्वर दोनों को एकसा ही नित्य मानते हो वा दोनों में भिन्न २ नित्यता है ?। यदि नित्यत्व में भेद कहो तो

छोटी अनित्यता कभी नष्ट अवश्य होगी। क्यों कि ऐसा न हो तो दो में एक की अनित्यता छोटी हो नहीं सकती तव अनित्यता के न्यूनाधिक होने पर एक सापेक्ष नित्य का नाश होना क्या मानोगे ऐसी दशा में तीन के अनादि होने का मत क्यों नहीं कटेगा ? ॥

४३-यदि कहो कि जीव ईश्वर दोनों की नित्यता में कुछ भेद नाम न्यूनाधिक भाव नहीं है तो (नित्योनित्यानां०) इस श्रुति में जीवों से बड़ी नित्यता ईश्वर की क्यों कही, जिस को राजाओं का राजा कहा जाय उस की अपेक्षा अन्य राजाओं का राज्य बहुत छोटा ठहरता है। वैसे यहां जीवों की नित्यता क्या छोटी नहीं ठहरेगी ? ॥

४४-इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःख, ज्ञान इन सब का जीव के साथ समवाय सम्बन्ध से रहना मानते हो वा संयोग सम्बन्ध से इच्छादि जीव के साथ रहते हैं ? ।

४५-यदि समवाय सम्बन्ध से जीव के साथ मानो तो द्वेष तथा दुःख मुक्ति में मानने पड़ेंगे तब तुम्हारे मतमें कोई भी आ० समाजी कभी भी दुःख से मुक्त न हो सकेगा सदा ही दुःख भोगने पड़ेंगे ॥

४६-यदि जीव के साथ इच्छादि संयोग सम्बन्ध से मानो तो संयोग के अभाव में तुम्हारा जीव ज्ञान शून्य जड़ क्यों नहीं हो जायगा ? ॥

४७-जो अल्पज्ञ हो वह जीव है ऐसा लक्षण मानो तो योग सिद्धि प्राप्त कर लेने पर मनुष्य भी सर्वज्ञ वा त्रिकालज्ञ हो सकता हैं तब क्या उस २ जीव को ईश्वर मान लोगे। और जीव के ज्ञान की सीमा कहां तक नियत करोगे ? । जहां तक जीव के ज्ञान की हद करोगे क्या उससे आगे कोई कुछ न जान सके यह सम्भव है ?॥

४८-जीव का जन्म मरण प्रवाह अनादि अनन्त मानते हो वा अनादि सान्त। यदि अनादि अनन्त कहो तो तुम्हारे मत में जीव की मुक्ति कभी नहीं हो सकेगी। और यदि अनादि सान्त कहो तो क्या वेदानुकूल मुक्ति को नित्य मान लोगे ? ॥

४६-मनुस्मृति अ० १२ श्लोक १३ । १४ में जो महत्तत्त्वको जीव कहा है क्या तुम लोग उसको ठीक नहीं मानते । यदि नहीं मानते तो किस युक्ति प्रमाण से उसका खण्डन करते हो ? सो बताओ ।

५०-क्या इस स्थूल शरीर में कर्म करने वाला जीव को ही मानते हो वा अन्य किसी को मानते हो । यदि जीव ही कर्म करने वाला है तो मनु० अ० १२ श्लोक १२ के अनुसार भूतात्मा अर्थात् सूक्ष्म शरीर का नाम जीव तुम्हारे मत में हुआ । सो ऐसा मानने में क्या कोई वेद का प्रमाण है ? ।

५१-क्या मन्त्र भाग चारों संहिताओंमें जीवका लक्षण वा स्वरूप नहीं लिखा है । यदि लिखा है तो वह मन्त्र दिखाओ । और नहीं लिखा तो तुम्हारा कपोल कल्पित मत कोई क्यों मानेगा ? ॥

५२-जीव का ईश्वर के साथ पिता पुत्र सम्बन्ध तुम मानते हो वा नहीं । यदि मानते हो तो क्या ईश्वर जीव का उत्पादक है ? यदि ईश्वर जीव का उत्पादक है तो जीव नित्य नहीं हो सकेगा ॥

५३-क्या तुम जीवको स्वतन्त्र मानते हो वा ईश्वराधीन (दैवाधीन) यदि स्वतन्त्र मानते हो तो (यंकामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्) इस ऋग्वेद अ०८ । ७ । ११ । के वागम्भृणी सूक्तस्थ मन्त्र में वागृम्भणी देवी ने कहा है कि मैं जिस को चाहती उसी को बड़ा बनाती हूं अर्थात् जिस को चाहती उसी को ब्रह्मा उसी को ऋषि और उसी को बुद्धिमान् बनाती हूं । इस वेद के कथन से क्या जीव का पराधीन वा दैवाधीन होना साफ २ सिद्ध नहीं है ? ।

५४-(सएव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य ऊर्ध्वं निनीषते । सएवासाधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्योऽधो निनीषते) वही ईश्वर वा दैव उससे अच्छा कर्म कराता है कि जिसकी उन्नति करना चाहता है । और वही उससे बुरा कर्म कराता है कि जिस को अधोगति में गिराना चाहता है । क्या इस श्रुति प्रमाण के अनुसार जीव का पराधीन होना सिद्ध नहीं है । तथा ऐसी दशा में तुम्हारा मत वेद विरुद्ध क्यों नहीं है ? तथा [यं तु

रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तम्। यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्] इन विदुर नीतिके वचनोंसे भी क्या जीव का दैवाधीन होना स्पष्ट सिद्ध नहीं है ? । तब वेदादि से विरुद्ध जीवकी स्वतन्त्रता तुम क्यों मानते हो ? ॥

वेद विषय ।

५५-क्या वेद को तुम निर्विकल्प प्रामाणिक मानते हो वा नहीं । यदि मानते हो तो वेद मन्त्रोंसे जैसीं २ प्रार्थना तुम करते हो तब क्या वे २ काम वैसे ही सिद्ध हो जाते हैं । यदि काम सिद्ध नहीं होते तो वेदकी प्रामाणिकता कहां रही ? । यदि वेदको प्रामाणिक नहीं मानते तो वेद का नाम ले लेकर संसार को धोखा क्यों देते हो ? ॥

५६-तुम्हारे मत में वेद का लक्षण क्या है । यदि कहो कि (अपौरुषेयं वाक्यं वेदः) जो किसी पुरुष का बनाया न हो वह वेद है तो किसी स्त्रीका बनाया ग्रन्थ क्या वेद मानोगे । यदि कहो कि पुरुष नाम मनुष्यका बनाया न हो तो जब (सहस्रशीर्षा०) इत्यादि वेद मन्त्रों में ईश्वर का नाम भी पुरुष तुमने माना है तब ईश्वरोक्त होने से भी पौरुषेय हो जाने पर तुम्हारा लक्षण खण्डित क्यों नहीं हुआ ? यदि कहो कि (ज्ञान साधनं वेदः) ज्ञान का साधन वेद है तो क्या संस्कृत के तथा अन्य भाषाओं के अनेक पुस्तकों से ज्ञान नहीं होता, तब क्या उन सबको वेद मान लोगे ? ।

५७-क्या तुम्हारे मत में शब्दात्मक वेद है वा ज्ञानात्मक है । यदि शब्दात्मक कहो तो निराकार निर्गुण निरीह ब्रह्म से शब्दात्मक वेद की उत्पत्ति कैसे होगी ? । क्योंकि शब्द की उत्पत्ति ताल्वाद्यभिघात क्रिया जन्य है । क्या निष्क्रिय वस्तुसे शब्द की उत्पत्ति को तुम न्याय वैशेषिक की दलीलों से सिद्ध कर दोगे ? ।

५८-यदि ज्ञानात्मक वेद मानोगे तो किन्हीं खास पुस्तकों का नाम वेद कैसे मान सकोगे । किन्तु वैसा अपेक्षित ज्ञान जिन २ पुस्तकादि में मिले वे सभी क्या वेद नहीं ठहरेंगे ॥

५९-वेद की ११३१ शाखाओं में बारही शाखा वेद हैं शेष ११२७

शाखा वेद नहीं, इस में ऐसी पुष्ट युक्ति वा प्रबल प्रमाण क्या है। जिसका खण्डन न हो सके। यदि कहो कि सब शाखा ऋषिप्रोक्त होने से ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं इस से वे ईश्वर प्रोक्त नहीं हो सकतीं। तब यही बताओ कि जिन चार शाखाओं को तुम वेद मानते हो उनके ईश्वर प्रोक्त होने में क्या प्रमाण है॥

६०-पाणिनीय अ० अ० ४। ३। १०६ (शौनकादिभ्यश्छन्दसि) इस सूत्र के गणपाठ में १७ शब्द हैं। इन्हीं में वाजसनेय शब्द भी पढ़ा है। तुम जिन चार संहिताओं को वेद मानते हो उन में महर्षि वाजसनि प्रोक्त वाजसनेयी शुक्ल यजुःसंहिता है। वैसे कौथुमी शौनकी आदि ये चारों संहिता भी ऋषिप्रोक्त है। तब क्या इन का भी वेद मानना छोड़ दोगे?।

६१-जब स्वा० द० ने अष्टाध्यायी के सूत्रों में जहां २ छन्दसि आया वहां २ छन्दःपदसे मन्त्रभाग वेदका ग्रहण किया है तो (शौन-कादिभ्यछन्दसि) में भी तुम को छन्दःपद से वेद का ग्रहण करने ही पड़ेगा?। तब शौनकादि प्रोक्त वेद की सत्रह शाखा तुमको वेद मानने पड़ेंगी। यदि न मानोगे तो वाजसनेयी और शौनकी आदि चार शाखाओंका वेदत्व भी छोड़ना पड़ेगा। ऐसी दशा में या तो १७ वेद मानो या चार को भी छोड़ो। अब तुम लोग दोनों वा चारों ओर से गिरफ़ार हो गये सो कैसे छूटोगे?॥

६२-क्या तुम वेद को स्वतःप्रमाण मानते हो वा नहीं?। यदि मानते हो तो प्रत्यक्षानुमान के अनुकूल वेदार्थ करनेका अडंगा क्यों लगाते हो?।

६३-क्या प्रत्यक्षानुमान से विरुद्ध भी सीधा २ वेदार्थ मानलोगे? यदि न मानोगे तो प्रत्यक्षानुमान के आधीन होने से वेद परतःप्रमाण क्यों नहीं हुआ। और ऐसी दशा में स्वतःप्रमाण कैसे होगा?।

६४-जो बात प्रत्यक्षानुमान से सिद्ध हो सकती है उसके लिये वेदप्रमाण की आवश्यकता ही क्या है। ऐसी दशा में शब्दप्रमाण का मानना निरर्थक क्यों नहीं है? जब चक्षु से रूप दीख सकता है तो उसी काम के लिये अन्य इन्द्रिय का होना व्यर्थ होने के तुल्य

प्रत्यक्षानुमान सिद्ध विचारों के लिये वेद का मानना निरर्थक क्यों नहीं है ? ।

६५-प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते । एतं विदन्ति वेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता ॥ क्या इस लक्षण के अनुसार तुम वेद को मानते हो । यदि मानते हो तब मन माना वेदार्थ क्यों करते हो ? । ऐसा सिद्धान्त मान लो तब तो पक्के सनातनधर्मी हो जाओगे और ऐसा न मानोगे तो वेद का मानना निरर्थक क्यों न होगा ? ।

६६-सत्संप्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत्प्रत्यक्षमनिमित्तं० इत्यादि पूर्वमीमांसा शास्त्र १ । १ । ४ के सूत्र से वेदोक्त धर्मज्ञान में प्रत्यक्षानुमान के निमित्तत्व का जो खण्डन किया है क्या तुम उसे ठीक २ मानते हो । यदि नहीं मानते हो तो वेद का स्वतः प्रमाण मानने का धोखा देना क्यों नहीं छोड़ देते । और जो उक्त मीमांसा प्रमाण को मानते हो तो वेदार्थ में प्रत्यक्षानुमान की अनुकूलता का अडंगा क्यों लगाते हो ? ॥

६७-न्याय दर्शन २ । १ । ५० सू०-आप्तोपदेश० इत्यादि न्यायसूत्र से शब्द प्रमाण विषयांश को प्रत्यक्षानुसार से जो पृथक् सिद्ध किया है उसे यदि वैसा ही न मानो तो तुम्हारा वेद मानना खण्डित हो जाता है सो क्या अभी तक नहीं जान पाया है ? ॥

६८-ब्राह्मण ग्रन्थों की वेद संज्ञा न होने में जो पहिला हेतु स्वा० द० ने ऋग्वे० भूमिका में पुराण इतिहास संज्ञा होना दिया है सो जब अथर्व के मूल मन्त्रों में आये इतिहास पुराण शब्दों का अर्थ तुमने [ऋ० भू० वेद संज्ञा वि० प्र० में] ब्राह्मण मान लिया तो मूल मन्त्र भाग वेद में ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम आ जाने से उन का स्वतः प्रमाण वेद होना क्या सिद्ध नहीं हो गया ? और जब सिद्ध हो गया तो इतिहास पुराण संज्ञा होने से ब्राह्मणों के वेद न होने का लेख क्या तुम्हारे ही कहने से नहीं कट गया । और क्या यह अपने ही पग में कुल्हाड़ी मारने के तुल्य दशा नहीं है । क्या तुम

लोग अपने इस वदतोव्याघात दोष को अब भी नहीं मानोगे। और यदि मानोगे तो ऋग्वे० भूमिका के पुराणेतिहास हेतु पर हरताल क्यों नहीं लगाते ? ।

६९–जब अथर्व संहिता काण्ड ११ । अनु० ३ में (पुराणं यजुषा सह) साफ २ लिखा है कि यजुर्वेद अपने ब्राह्मण सहित उच्छिष्ट नामक ईश्वर से प्रकट हुआ और इस मन्त्र का ऐसा ही अर्थ तुम को भी मानने पड़ा तो पुराण होने से ब्राह्मण ईश्वर प्रोक्त वेद नहीं यह तुम्हारा कथन क्या मूल वेद के प्रमाण से नहीं कट गया। और कट गया तो ब्राह्मण ग्रन्थों के वेद न होने का मिथ्या हठ करना क्यों नहीं छोड़ देते ॥

७०–ऋग्वेदादि भूमिका में जो ब्राह्मणों के वेद न होने में दूसरा हेतु वेद का व्याख्यान होना दिया है। उस के खण्डनार्थ जब मन्त्र भाग वेद में ही मन्त्र का व्याख्यान दिखा दिया गया तो जैसे व्याख्यान होने से ब्राह्मण वेद नहीं वैसे ही व्याख्यान रूप संहिता के अंश का भी वेद न होना क्या मान लोगे ? । यदि मान लोगे तो प्रणव तथा गायत्री का व्याख्यान होने से सभी संहिताओं का वेद होना क्या नहीं कटेगा ॥

७१–वेद का व्याख्यान होने से ब्राह्मण ग्रन्थों को जैसे वेद नहीं मानते हो, वैसे ही क्या अष्टाध्यायी का व्याख्यान होने से महाभाष्य को भी व्याकरण नहीं मानोगे। यदि मानोगे तो ब्राह्मणग्रन्थों को वेद मानने से कैसे बच सकोगे ? ॥

७२–यदि महाभाष्यको व्याकरण न मानो तो स्वा० दयानन्द के गुरु स्वा० विरजानन्द जी के बनाये "अष्टाध्यायीमहाभाष्ये द्वे व्याकरण पुस्तके" इस प्रमाण को क्या झूठा कहोगे ? ।

७३–क्या अष्टाध्यायी में "तस्यापत्यम्" इस मूल सूत्र का व्याख्यान सब अपत्याधिकार नहीं है। क्या प्रत्याहार सूत्रों का व्याख्यान सब अष्टाध्यायी नहीं है। तब यदि व्याख्यान होने मात्र से व्याकरणत्व न रहे तो अष्टाध्यायी का व्याकरण होना भी कैसे सिद्ध कर सकोगे ? ।

७४–जिस ईश्वर को तुम वेद का कर्त्ता मानते हो वह क्या वेद का व्याख्यान नहीं कर सकता था ?। यदि नहीं कहो तो ऐसा कोई पुष्ट युक्ति प्रमाण बताओ जो न कटसके। और हां कहो तो ब्राह्मण ग्रन्थोंको वेद क्यों नहीं मान लेते ॥

७५–यदि कहो कि ब्राह्मण ग्रन्थों में मनुष्यों के इतिहास हैं मूल वेद में नहीं तो यह तुम्हारा साध्यसमहेत्वाभास रूप निग्रहस्थान है। क्योंकि तुम्हारे मूल में भी जब अनेक इतिहास हैं। जब वामदेवादि कई ऋषियों का नाम स्वा० द० ने अपने वेदभाष्य में ही लिखा है तब तुम्हारे मूल वेद भी इतिहास होने से वेद न रहे। क्या यह अपने पग में कुल्हाड़ी मारना नहीं है। अब तुम्हारे मत में कोई भी पुस्तक वेद नहीं रहा।

७६–ऋ०भूमिका में ब्राह्मण ग्रन्थों के वेद न होने के लिये तीसरा हेतु "ऋषिभिरुक्तत्वात्, कहा है कि ऋषियों के कहे होने से ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हैं। सो क्या मन्त्र संहिता ऋषिप्रोक्त नहीं हैं। यदि नहीं कहो तो अष्टाध्यायी के शौनकादि गण में सत्रह शब्दों से वेद की सत्रह शाखाओं के नाम सिद्ध क्या नहीं होते और क्या उस गण में वाजसनेय शब्द नहीं पढ़ा है। अथवा तुम्हीं बताओ कि वाजसनेयी संहिता जो शुक्ल यजुः शाखा है उस वाजसनेयी पद का अर्थ क्या है। जब कि वाजसनेयेन प्रोक्ता यही अर्थ मानना पड़ेगा तो मन्त्र संहिता भी ऋषिप्रोक्त होने से वेद नहीं रहीं। तब तुम्हारा वेद २ चिल्लाना झूठा हल्ला क्यों नहीं है ? ॥

७७–जब मन्त्रसंहिताओं का ऋषिप्रोक्त होना हम महाभाष्यादि के अनेक प्रमाणों से सिद्ध करते हैं और स्वा० द० ने ब्राह्मण ग्रन्थों को [ऋ०भू० में–पुराणैः प्राचीनैर्ब्रह्माद्यर्षिभिः प्रोक्ता ब्राह्मणकल्पग्रन्थाः] ऋषिप्रोक्त लिखा तो यदि ऋषिप्रोक्त होने से ब्राह्मण वेद नहीं रहे तो वैसे ही संहिताओं का वेद होना भी क्या खण्डित नहीं हो गया। और ऋषिप्रोक्त होने पर भी यदि संहिता वेद हैं तो वैसे ही ब्राह्मण भी वेद क्यों नहीं हैं ॥

७८-ऋ० भू० में चौथा हेतु ब्राह्मण ग्रन्थों के वेद न होने में स्वा० द० ने अनीश्वरोक्त होना दिया है। सो क्या तुम ऐसा कोई प्रमाण दे सकते हो कि जिस में मन्त्र संहिता ईश्वरोक्त हों। और ब्राह्मण ईश्वरोक्त न हों। यदि ऐसा प्रमाण है तो दिखाओ। यदि नहीं है तो अनीश्वरोक्त कहना झूठा क्यों नहीं है उक्त शब्द वच धातु का है, उसी से वचन वाक् शब्द भी बनते हैं। वाक् नाम वाणी साकार में होती है। यदि वेदको ईश्वरोक्त कहो तो साकारोक्त मानने से कैसे बचोगे। तब ईश्वरोक्त कहना बड़ा अज्ञान सिद्ध क्यों नहीं है?॥

७९-वेद में जज्ञिरे, अजायत, अपातक्षन्, अपाकषन्, निःश्वसितम्। इत्यादि क्रिया पढ़ीं तब कहीं उक्त क्रिया क्यों नहीं है?। और जैसे ईश्वर से मन्त्र प्रकट हुए वैसे हीं [पुराणं यजुषा सह] पुराणादि पदवाच्य ब्राह्मण ग्रन्थ भी उसी ईश्वर से प्रकट होना सिद्ध है। तब अनीश्वरोक्तत्व हेतु मिथ्या क्यों नहीं?।

८०-ऋ० भू० में पांचवां हेतु-कात्यायनभिन्नैर्ऋषिभिर्वेदसंज्ञायामस्वीकृतत्वात्। दिया है सो कात्यायन ऋषि ने ब्राह्मणों की वेद संज्ञा कब और कहां लिखी है? [मन्त्र ब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्] इस आपस्तम्बीय यज्ञपरिभाषा सूत्र को समाजी लोग अन्ध परम्परा से अब तक कात्यायन का प्रमाण लिखते कहते मानते रहे सो क्या यह बड़ा अज्ञान नहीं है?। स्वा० द० के ऐसे लेखों से क्या यह सिद्ध नहीं है कि इन श्रौत ग्रन्थों को उन ने देखा जाना नहीं था।

८१-क्या तुम लोग बता सकोगे कि किस २ ग्रन्थ में किस २ ऋषि ने किस २ प्रमाण से वेद संज्ञा कही है। और किस २ ने उस वेद संज्ञा में ब्राह्मण ग्रन्थों को स्वीकार नहीं किया। यदि यह कथन सर्वथा मिथ्या है तो ऐसे महामिथ्या ग्रन्थों को मानते हुए तुम लोगों को लज्जा संकोच वा शर्म क्यों नहीं आती, ग्लानि क्यों नहीं होती?॥

८२-स्वा० द० के लेख से जान पड़ता है कि आपस्तम्बीय यज्ञपरिभाषा के तुल्य अन्य ऋषियों ने केवल मन्त्रभाग की वेद संज्ञा

मानी और उसमें ब्राह्मण ग्रन्थों को स्वीकार नहीं किया; सो तुम ऐसे प्रमाण उन २ ग्रन्थों के पते सहित बताओ और न बता सको तो स्वा० द० के मिथ्या लेख पर हरताल क्यों नहीं लगाते ? ॥

८३-ऋ० भू० पु० में छठा हेतु मनुष्य बुद्धिरचित होना कहा है। सो वह मनुष्य बुद्धि क्या और कैसी है। तुम्हारे पास मनुष्योंकी और ईश्वर की बुद्धि की खासियत का कोई प्रमाण हो तो दिखाओ।

८४-क्या ब्राह्मण ग्रन्थों में दर्शपौर्णमासादि यागों का सूक्ष्म से सूक्ष्म व्याख्यान किया है वह सब मनुष्य बुद्धि का ही चिह्न है ? ॥

८५-स्वा० द० ने अपने यजुर्वेद भाष्यमें पृ० ३८० में लिखा है कि "हे ईश्वर मैं और आप पढ़ने पढ़ाने हारे दोनों प्रीति के साथ वर्त्त-कर विद्वान् धार्मिक हों" यहां मनुष्यों के तुल्य ईश्वरको भी विद्या वृद्धि करने और धर्मात्मा बनने का उद्योग दिखाया है। यदि यही वेद भाष्य सत्य माना जाय तो यही वेदाशय ईश्वर बुद्धि का लक्षण क्या मानोगे कि जिस में ईश्वर को भी अविद्या तथा अधर्म ने घेर लिया है। क्या यह कुरान के खुदा की सी बातें नहीं हैं। क्या निराकार ईश्वर स्वा० दयानन्द के साथ कभी कहीं पढ़ता रहा है।

८६-यजुर्वे० भा० पृ० ४४५ "हे जगदीश्वर ! जिस कारण आप सुख दुःख के सहन करने और कराने वाले हैं।" क्या यही वेदा-शय ईश्वर बुद्धिका लक्षण है। क्या मनुष्यों के तुल्य ईश्वर को भी सुख दुःख वास्तव में सहने पड़ते हैं ? ॥

४—धर्मशास्त्र विषय।

८७-तुम्हारे मत में स्मृति वा धर्मशास्त्र कितने हैं और जो बात वेद में हो वही स्मृति में हो तो मानो, वेद से भिन्न विचारों को वेद विरुद्ध कहो तो स्मृति पुस्तकों के मानने की क्या आवश्यकता है। जब ऐसा है तो स्मृतियों का झूठा नाम ले २ कर संसार को धोखा क्यों देते हो ॥

८८-विरोधेत्वनपेक्ष्यं स्यादसतिह्यनुमानम्। क्या इस मीमांसा सूत्र के अनुसार स्मृति के वचन का श्रुति के साथ विरोध न दीखे तो तुम यह अनुमान करते हो कि इस की श्रुति भी होगी कि जो

सर्वज्ञ न होने से हमारे दृष्टिगोचर नहीं हुई है। यदि ऐसा मानो तो मनु में प्रक्षिप्त का अड़ंगा क्यों लगाते हो ? ॥

८९–क्या तुमने जिन २ श्लोकों को प्रक्षिप्त कहा माना है उन २ का मूल वेद में कहीं है ही नहीं ऐसा पूरा २ खोज कर लिया है। यदि नहीं किया तो सत्य बात को मिथ्या कहने से सर्वस्तेय रूप महापातक का अपराध तुमको क्यों नहीं लगेगा। सत्यवाणी को चुराने नाम मिथ्या करने वाला सब वस्तु मात्र की चोरी करने का अपराधी है ॥

९०–एक मनुस्मृति ही प्रमाण है अन्य स्मृतियां मान्य नहीं यह बात तुम्हारी मनगढ़न्त की नहीं तब क्या कोई प्रमाण है ?। यदि है तो वह प्रमाण सबके सामने उपस्थित क्यों नहीं करते। क्या अन्य स्मृतियों की अपने अनुकूल अच्छी बातें भी नहीं मानोगे ? ॥

९१–यदि अपने विचार के वा मत के अनुकूल स्मृत्यादि सब ग्रन्थोंके अंशों को मान लेते हो तब क्या वेद विरोधी नास्तिक तथा ईसाई मुसलमान सभी ऐसे नहीं हैं ? अर्थात् जब अपने अनुकूल अंशों को सभी नास्तिकादि मान लेते हैं तब उन में और तुम में क्या भेद रहा ?।

९२–जब अपने मतके अनुकूल ही वेद स्मृत्यादि को घसीट कर तुमने लगाया तो वह तुम्हारा मत ही स्वतः प्रमाण वेद हुआ। और अपने मत के अनुकूल होने पर वेद को मानने से वह परतःप्रमाण क्यों नहीं हो गया ? ॥

९३–वेदसे भिन्न मनु आदिके जो सैकड़ों मन्त्र श्लोकादि सत्यार्थप्रकाश में लिखे हैं वे जिस २ वेद मन्त्र के अनुकूल जानकर लिखे गये थे वहां २ वे स्वतःप्रमाण मन्त्र ही क्यों न लिखे गये। यदि वेद मन्त्र नहीं मिले तो सिद्ध हुआ कि वे सब वेदविरुद्ध लिखे गये हैं तब जिसमें दश गुणे वेद विरुद्ध प्रमाण लिखे गये और एक गुणे वेद के प्रमाण हैं तो वह ग्रन्थ सत्य कैसे हो सकता है। इससे यह वेदविरुद्ध मिथ्यार्थप्रकाश क्यों नहीं हो गया तब तुम ऐसे पु० को सत्यार्थप्रकाश क्यों कहते हो ? ॥

९४-क्या तुम सत्यार्थप्रकाश में लिखे वेद से भिन्न प्रमाणों को कभी वेदानुकूल सिद्ध कर सकते हो। यदि नहीं कर सकते और उन ग्रंथों को निर्विकल्प प्रामाणिक भी नहीं मानते तो स० प्र० में अन्य ग्रन्थों के इतने प्रमाण लिखना संसार को धोखा देने के लिये क्यों नहीं है ?।

९५-मनुस्मृत्यादि जिन २ ग्रन्थों के जितने श्लोकादि तुम को मान्य हैं उन सब की प्रामाणिकता क्या वेद से सिद्ध कर सकते हो यदि नहीं कर सकते तो शेष भाग को प्रक्षिप्त कहने का साहस तुम को कैसे हो गया है ॥

९६-यदि कोई खण्डन करे कि जितने श्लोक तुम मनुजी के बनाये मानते हो उन में मनु का एक भी नहीं है किसीने बनाकर मनु का नाम रख दिया है इस से सभी मनु प्रक्षिप्त है तब क्या तुम मनु की बनाई मनुस्मृति को सिद्ध कर सकोगे ? ॥

५—इतिहास पुराण ।

९७-क्या तुम्हारा यह मत है कि महाभारतादि इतिहास और श्रीमद्भागवतादि नाम से प्रसिद्ध पुराण गप्प हैं । अज्ञानी धूर्त लोगोंने कल्पना कर लिये हैं। और इतिहास पुराण नामक ब्राह्मण ग्रन्थ माननीय सत्य हैं। क्या यह तुम्हारा मत ठीक है ? ॥

९८-यदि कहो कि हमारा यह मत नहीं है तो स्वा० दयानन्दको क्या मिथ्यावादी कहोगे। और वैसी दशा में तुम्हारा मत क्या है सो भी बताओ। और यदि कहो कि हमारा यही मत है तो तुम्हारे गुरु० स्वा० द० ने यह भी लिखा है कि विष मिले अन्नको त्याग देने के तुल्य असत्य जिस में मिला हो ऐसे सत्य को भी त्याग देना चाहिये। इसके अनुसार महाभारतादि इतिहास और अष्टादश पुराण तुम्हारे मत में सर्वथा असत्य विष मिले अन्न के तुल्य त्याज्य हुए नहीं। ऐसी दशा में तुम पर निम्न लिखित प्रश्न खड़े होते हैं॥

९९-इतिहास पुराणों के प्रामाणिक न होने पर व्यास जी का होना ही सिद्ध नहीं। यदि महर्षि पाराशर से व्यास जी की उत्प-

त्ति होना सत्य मानो तो तुमने इतिहास पुराणोंका प्रमाण मान लिया और व्यास जी का होना सिद्ध नहीं तो व्यास के साथ नियोग होने आदिक व्यास सम्बन्धी सब कथायें बन्ध्यापुत्र की कथाओं के तुल्य मिथ्या क्यों नहीं हैं ?॥

१००-पुराणों के सत्य न मानने पर शुकदेव का होना ही सिद्ध नहीं तब मुक्त हो जाने पर भागवत की कथा सुनाने का आक्षेप करना विना नींव की भित्ति के तुल्य असत्य क्यों नहीं है ? ॥

१०१-यदि कहो कि तुम सनातनी लोग पुराणों को सत्य मानने के साथ श्रीमद्भागवत का राजा परीक्षित्को सुनाना सत्य मानते हो उनकी असम्भवता दिखाने के लिये हमारा कथन है तो उत्तर होगा कि स० प्र० पु० के नवम समुल्लास में स्वा० द० ने (शृण्वन् श्रोत्रं भवति०) इत्यादि छान्दोग्योपनिषद् के प्रमाण पर लिखा है कि मुक्त पुरुष जिस २ इन्द्रिय से काम लेना चाहता, जो २ संकल्प करता है वैसा २ सब काम संकल्प सिद्ध होनेसे कर सकता है। तब क्या मुक्त हुए शुकदेव जी संकल्प करके श्री पूर्णब्रह्म कृष्ण परमात्मा के गुणानुवाद की कथा सुनाने का सत्य सङ्कल्प नहीं कर सकते थे ? । जब मुक्त के लिये लिखा है कि (स एकधा भवति द्विधा भवति) वह एक वा अनेक प्रकार के संकल्प सिद्ध अनेक २ रूप धारण कर सकता है। तब शुकदेव जी का राजा परीक्षित् को कथा सुनाना असम्भव कैसे हो सकता है। क्या तुम को यह न सूझा कि इस को असम्भव असत्य सिद्ध करना चाहते हैं तो स्वा० द० के उक्त लेख पर पहिले हरताल लगा देवें ॥

१०२-जब शुकदेव का मृत्यु ही नहीं हुआ किन्तु जन्म मरण के बन्धनसे छूटकर सदा के लिये अमर हो गये तब मरण की कल्पना मन मानी करके आक्षेप करना क्या तुम लोगों का महा अज्ञानान्धकार नहीं है ॥

१०३-जब इतिहास प्रामाणिक नहीं तो पांच पाण्डवों के नियोग होने की कथा, द्रौपदी के पांच पति होना, कुमारी कुन्ती के कानसे कर्ण का होना, इत्यादि सत्य कैसे हैं । यदि सत्य हैं तो इन अंशोंमें

तुम ने इतिहास को सत्य मान लिया, तब मिथ्या कहना लिखना ही मिथ्या क्यों नहीं हुआ ?। और यदि मिथ्या कहो तो पांच पाण्डवों की उत्पत्ति आदि आकाश के फूल तोड़ने के तुल्य सर्वथा मिथ्या क्यों नहीं है ?।

१०४-जब कि पुराण असत्य हैं तो चीरहरण, गोपियों के साथ विहार करने आदि कृष्ण भगवान् की लीलाओं पर मिथ्या आक्षेप क्यों करते हो। क्योंकि मिथ्या होने की दशा में कृष्ण का मनुष्य होना भी सिद्ध नहीं। और आक्षेप के लिये पुराण सत्य हैं तो अलिप्त सर्वव्यापी निरञ्जन परमात्मा का अवतार भी सत्य क्यों नहीं हुआ ?॥

१०५-अपने अनुकूल कल्पित मत की पुष्टि के उपयोगी पुराणों के वचनों को तुम सत्य क्यों मान लेते हो। क्या उसी न्याय से वेही पुराण अन्योंके लिये प्रमाण न हो सकेंगे। जैसे कोई कहे कि हमारी आंख रूप को देख सकती है अन्यकी नहीं वैसा ही वेसमझी का कथन तुम आ० समाजियों का है॥

१०६-जिस नियम वा न्यायसे क्षत्रिय वरके साथ ब्राह्मणी कन्या का विवाह कर देने के लिये तुम राजा ययाति के उपाख्यान को प्रमाण मानते हो उसी न्याय से राजा ययाति की सब कथा माननी पड़ेगी। तब क्या एक सहस्र १००० वर्ष के लिये राजाका बुड्ढे से युवा होना, आकाश मार्ग से शुक्राचार्य के पास जाना अन्य पुत्रों को शाप देना एक पुरु नामक पुत्रको वरदान देना इत्यादि सब कथा सत्य मानोगे ?।

१०७-यदि असम्भव कहो तो हम स्वर्ग लोक मृत्युलोक के कन्या वरों का विवाह होना ही प्रथम असम्भव सिद्ध कर देंगे। अथवा जो कुछ तुम कहोगे उस सब को असम्भव सिद्ध करेंगे॥

१०८-जब कि योग दर्शनके विभूतिपाद में कही सिद्धियोंको तुम मानते हो और जिन २ पराशर व्यासादि की कथा इतिहास पुराणों में लिखी गयी हैं वे लोग प्रायः सभी परम सिद्ध योगिराज थे तब पुराणों की कथायें सम्भव सिद्ध क्यों न हुईं। फिर ऐसी दशा में

सत्य पुराणों को मिथ्या कहने का पाप अपने शिर क्यों लादते हो॥

१०६-क्या इतिहास पुराणों का जो पांच प्रकार का लक्षण (सर्गश्च०) इत्यादि है वह सब मतलब अष्टादश पुराण को छोड़ कर ब्राह्मणादि ग्रन्थोंसे सिद्ध कर दोगे ? यदि ऐसा कर सको तो किसी उग्रवंश का पूरा २ चरित्र ब्राह्मण ग्रन्थों में दिखाओ ॥

११०-क्या (यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य विषयः) मन्त्र और ब्राह्मणका विषय यज्ञ है। इस महर्षि वात्स्यायन के लेख को मानते हो यदि मानते हो तो क्या पुराण रूप ब्राह्मण और वेदका एक ही यज्ञ विषय मान लोगे।

१११-(द्रष्टृप्रवक्तृसामान्याच्च०) मन्त्र ब्राह्मण तथा इतिहास पुराण के द्रष्टा निर्माता एक ही हैं, वात्स्यायन जी के इस कथन से भी ब्राह्मणोंसे भिन्न इतिहास पुराण प्रमाणरूप क्या सिद्ध नहीं हैं॥ ?

६-धर्म विषय।

११२-तुम्हारे मत में धर्म का लक्षण क्या है। यदि कहो कि जो वेद प्रतिपादित है वही धर्म है तो वेद प्रतिपादित एक शब्द से कहा जाने वाला कौन धर्म है। यदि मीमांसा सूत्रानुसार चोदना लक्षण मानो तो क्या तुम यज्ञ के यथार्थ विधान को धर्म मानते हो॥

११३-जब सर्व सम्मति से विधि वाक्य मन्त्र नहीं किन्तु मन्त्र विधेय हैं। गौतमीय न्याय तथा वात्स्यायन भाष्य (अ० २। १। ६०। ६१। ६२) इत्यादि से सिद्ध है कि विधि अर्थवाद, अनुवाद ये तीनों प्रकार के वाक्य ब्राह्मण ग्रन्थों में ही हैं। यही बात मीमांसादि के प्रमाणों से भी ठीक २ सिद्ध हो जाती है। इस के अनुसार चोदना लक्षण विधायक वाक्य [अग्निहोत्रं जुहुयात्] इत्यादि ब्राह्मण ग्रन्थों के हैं और ब्राह्मण ग्रन्थ तुम्हारे मत से वेद हैं नहीं, जो वेद है वह विधायक नहीं किन्तु स्वयं विधेय है तब मीमांसा के अनुसार तुम्हारे मत में वेदोक्त धर्म कुछ भी नहीं रहा सो क्या अब धर्म हीन छूंछे नहीं रह गये ? ॥

११४-क्या अब भी नहीं समझे कि एक तिल भर भी वेदोक्त धर्म तुम्हारे हाथ न लगा। क्या विधायक और विधेय के मर्मांश

को समझने वाले समाजियों में कोई भी उर्वक्षादि (१) हैं वा नहीं। क्या कहीं विद्वन्मण्डली में कोई भी समाजी किसी भी युक्ति प्रमाण से मन्त्रों को विधायक सिद्ध करने का साहस रखता है ? ॥

११५-यदि कोई ऐसा साहस रखता हो तो अपना नाम प्रकट करे और वेदतत्त्वार्थविदों की सभा में मन्त्रों का विधायक होना मीमांसा की रीति से सिद्ध कर दे तो ५००००) रु० पारितोषिक दिया जायगा। क्या समाजी लोग अब सचेत होकर हमारा मत वेदोक्त वेदानुकूल है ऐसा सिद्ध करके अपना मुख उजला कर लेंगे। अथवा ऐसा करने को कटिबद्ध न हों तो क्या सनातन धर्मी लोग नहीं मान लेंगे कि इन समाजियों का वेदोक्त धर्म मानने का हल्ला संसार को धोखा देने मात्र के लिये है ॥

११६-एक शब्द से कहा जाय ऐसा वेद का विषय क्या है। क्या इस बात को समाजी लोग बता सकते हैं वेद का प्रतिपाद्य विषय खास कर एक यज्ञ है क्या इस बात को महर्षि आपस्तम्ब, जैमिनि, वात्स्यायनादि के प्रमाणानुसार समाजी लोग ठीक २ वैसा ही मानते हैं। यदि मानते हैं तो पद्धति बनाने के लिये यज्ञ का स्वतःप्रमाण विधान कहां से लावेंगे। क्या मन्त्रों को विधेय विधायक दोनों मान लेंगे ॥

११७-अमुक मन्त्र से अमुक काम इस २ रीति से करे ऐसा विचार जिस ग्रन्थ में लिखा है उसी ग्रन्थ के वैसे वाक्य विधि वा विधायक हैं। और जिस मन्त्र की प्रतीक दिखाई गयी वही मन्त्र विधेय है। क्या महर्षियों के स्थापित इस नियम को समाजी लोग ठीक २ ऐसा ही मान लेंगे ॥

११८-यदि महर्षि मर्यादा को वेदोक्त धर्म विषय में समाजी लोग न मानेंगे तो वेद को भी कैसे मान सकेंगे, तब वेद के मान्य होने में प्रमाण ही क्या रहेगा अर्थात् उस हालत में वेद का भी मण्डन कैसे कर सकेंगे ॥

---

(१) नोट-उरु नाम बहुत आंखों वाला आदि कोई हों तो वैसा करे, एक दो आंख वालों का काम नहीं है।

११६-समाजियों के मत में वेदोक्त यज्ञ धर्म का मान्य होना भी जब सिद्ध नहीं हुआ तो इन लोगों का वेदोक्त धर्म मानने का दावा क्या मिथ्या सिद्ध नहीं हो गया ?। क्या समाजी लोग अब भी वेदोक्त धर्म के हल्ला का हठ नहीं छोड़ेंगे ?॥

१२०-यदि कहें कि (धृतिक्षमा०) इत्यादि धर्म के दश लक्षण हम मानते हैं। तो इस का प्रमाण तुम ने क्या मान लिया ?। जब तक धृति आदि को वेद में धर्म के लक्षण न दिखा सको तब तक धृत्यादि वेद विरुद्ध क्यों नहीं हैं। वेदमें न दिखा कर भी धृत्यादि को मानते हो तो मूर्त्ति पूजादि के लिये वेद के प्रमाण का हठ क्यों करते हो ?॥

१२१-धृत्यादि धर्म के सामान्य लक्षण हैं वा विशेष हैं। क्या तुम सामान्य विशेष दोनों प्रकार का धर्म ठीक २ मानते हो। एक स्थान में धृत्यादि दश लक्षण कहे और एक स्थान में (वेदःस्मृतिः०) वेद स्मृति आदि चार को साक्षात् धर्म का लक्षण कहा तो क्या यह विरोध नहीं है। अर्थात् धर्म के लक्षण चार कहना ठीक है वा दश, यदि चार साक्षात् हैं तो दश क्या साक्षात् नहीं हैं। क्या उक्त दश लक्षण गौण असाक्षात् हैं ॥

१२२-क्या तुम स्मृतिको साक्षात् धर्म का लक्षण मानते हो यदि मानते हो तो स्मृति का स्वतःप्रामाण्य सिद्ध हो गया कि नहीं ?। क्या अब भी नहीं शोचोगे। यदि स्मृति को साक्षात् धर्म का लक्षण नहीं मानते तो क्या वेद को भी साक्षात् धर्म का लक्षण न मानोगे। और वेद को मानने पर स्मृति को कैसे छोड़ सकोगे। अर्थात् (वेदःस्मृतिः०) इत्यादि श्लोक को ठीक प्रामाणिक मानते हो वा नहीं ?॥

१२३-तुम्हारे मत में क्या सदाचार धर्म का लक्षण है ?। वे सत् पुरुष कौन हैं कि जिन का आचार धर्म का लक्षण कहा और माना जावे। जो मर्यादापुरुषोत्तम बड़े २ कीर्त्ति वाले पुरुष हो चुके जिन के आचरणों का व्याख्यान विस्तार के साथ इतिहास पुराणों में

लिखा गया क्या उस से भिन्न कोई सदाचार धर्म का लक्षण हो सकता है तो उस के लिये युक्ति तथा प्रमाण क्या है? ॥

१२४-क्या तुम लोग सत्यभाषण को सब से बड़ा धर्म मानते हो। यदि मानते हो तो स्वा० द० की सैकड़ों मिथ्या बातों को सत्य ठहराने के हठ को क्यों नहीं त्यागते। क्या ऐसे मिथ्या के प्रतिपादनसे सत्य का आत्मघात नहीं होता? और होता है तो ऐसी बड़ी अधर्म की गठरी अपने शिर क्यों धरते हो? ॥

१२५-जब वेदोक्त धर्म तुम्हारा सिद्ध नहीं हुआ और स्मृति पुराणादि को तुम अविकल्प प्रमाण मानते नहीं तब क्या मन माना स्वकपोलकल्पित ही तुम्हारा धर्म है वा अन्य कुछ है? ॥

१२६-क्या तुम में से किसी भी विचारशील ने कभी शोचा है कि हमारा मान्य धर्म अव्यवस्थित है अथवा आगे कभी सोचोगे और अपने धर्मको क्या कभी व्यवस्थित करोगे ॥

७—कर्मकाण्ड विषय।

१२७-यदि सन्ध्या करने में मार्जन से आलस्य दूर होता है तो सूंघनी (हुलास) क्यों नहीं सूंघ लेते। थोड़ा जल छिड़कने से आलस्य भागता है तो दश बीस घड़ा जल ऊपर गिरा के जन्म जन्मान्तरों के आलस्य को क्यों नहीं भगा देते ॥

१२८-यदि आचमन से कण्ठ के कफ की निवृत्ति होती है, तो खांसी तथा दमा के रोग की दवा करने में डाक्टर वैद्यों को क्यों बुलाते और दवाई में सैकड़ों रुपया क्यों उड़ाया करते हो? ॥

१२९-क्या कर्मकाण्ड में ऐसी युक्ति लिखने कहने से कर्म का खण्डन नहीं होता। क्या ऋषि महर्षियों ने मार्जनादि के ऐसे प्रयोजन कहीं लिखे हैं ॥

१३०-जब ब्राह्मण श्रुति (अयज्ञिया वै माषा- अयज्ञियाश्चणकाः) में लिखा है कि होम यज्ञ में उड़द चना आदि चढ़ाने नहीं चाहिये फिर संस्कार विधि में उड़दों का होम करना स्वा० द० ने क्यों लिखा। क्या इसके लिये किसी वेद मन्त्रका प्रमाण दे सकते हो।

यदि प्रमाण नहीं दे सकते तो वेदविरुद्ध स्वा० द० का लिखना क्यों नहीं मान लेते ? ॥

१३१–यदि कहो कि यजु० अ० १८ कं० १२ में माष नाम उड़द यज्ञ में चढ़ाना लिखे हैं तो यह भूल है क्योंकि वहां यज्ञ में चढ़ानेके पदार्थों का परिगणन नहीं हैं किन्तु यज्ञ के द्वारा हमारे वाजादि पदार्थ समर्थ पुष्ट हों अर्थात् वाजादि पदार्थ हमको यज्ञ द्वारा प्राप्त हों ऐसी प्रार्थना की गयी है। यदि होम के वस्तुओंका परिगणन मानोगे तो क्या आगे पीछे की कण्डिकाओं में कहे प्राण- अपान मन, शान्ति, धृति, मिट्टी, पत्थर इनका भी सब का स्वाहा करोगे? ॥

१३२–स्वा० द०ने अपनी संध्यामें मनसे परिक्रमा करना लिखा है। परिक्रमा का अर्थ सब ओर पग चलाना है सो बताओ ! कि मन से पग कैसे चलते हैं।

१३३–तुम्हारे मतमें विना भोगे पाप दूर नहीं होते तब (पापदूरीकरणार्थाः अघमर्षणमन्त्राः) स्वा० द० के इस लेखानुसार अघमर्षण मन्त्र से कैसे पाप दूर होते हैं। यदि नहीं होते तो स्वा० द० का लिखना मिथ्या क्यों नहीं हुआ? ॥

१३४—स्वा० द० के बनाये पञ्चमहायज्ञविधिमें (अथेन्द्रियस्पर्श मन्त्राः) ऐसा लिख के आगे नाभिः, हृदयम्, कण्ठः, शिरः लिखा है सो चार संहिताओंके प्रमाणसे सिद्ध करो कि नाभि आदिका नाम इन्द्रिय कहां लिखा है। (वाक्वाक्) इत्यादि मन्त्र चार संहिताओं में कहीं नहीं लिखे तो वेद विरुद्ध क्यों नहीं हैं? ॥

१३५—स्वा०द० ने अपने सन्ध्योपासनविधि में (अथ मार्जनमन्त्राः) लिखकर (ओं भूः पुनातु शिरसि) इत्यादि वाक्य लिखे हैं सो क्या किसी वेदमें वे मार्जन के मन्त्र हैं। यदि नहीं हैं तो वेद विरुद्ध कैसे न होंगे। और तुम्हारे मत में वेद विरुद्ध वाक्य मन्त्र क्यों कर हो सकेंगे ? ॥

१३६—(शन्नोदेवी०) मन्त्रका विनियोग आचमन करने में किस प्रमाण से किया है। यदि कहो कि उक्त मन्त्र में जल पीने का

अर्थ हैं, तो स्वा० द०की सन्ध्यामें दिखाओ कि जल पीनेका अर्थ कहां है। जब नहीं है तो तुम्हारा आचमन वेद विरुद्ध क्यों नहीं हुआ ?॥

१३७-क्या यह सन्ध्याकर्म पंचमहायज्ञोंमें से कोई महायज्ञ है, यदि है तो कौन सा और उसके लिये प्रमाण क्या है। यदि ५ महायज्ञोंसे पृथक् है तो स्वा० द० ने इसको पांच महायज्ञोंमें क्यों धर घसीटा है ॥

१३८-यदि स्वाध्याय वा ब्रह्मयज्ञ सन्ध्याका नाम रक्खो तो (अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः) इस मनुजीके प्रमाणानुसार क्या पढ़ानेको सन्ध्या मानते हो ?। जिनको यह भी खबर न हो कि वास्तवमें पञ्चमहायज्ञ कौन २ हैं उनका लिखना वेद शास्त्रों से विरुद्ध क्यों नहीं होगा। और वेदानुकूल कैसे हो सकेगा ?।

१३९-सन्ध्योपासन में अमुक २ काम अमुक २ मन्त्रसे स्वा० द० के लिखे क्रमानुसार करें इसमें वेदका प्रमाण क्या है? गायत्री मन्त्रसे शिखा बांधना-रक्षा करना (उद्वयं०) से उपस्थान (ऋतञ्च०) सूक्तसे अघमर्षण करना इसमें क्या वेद का कोई प्रमाण दे सकते हो यदि नहीं दे सकते तो तुम्हारी सभी सन्ध्या वेद विरुद्ध क्यों नहीहै॥

१४०-क्या अग्निहोत्र देवयज्ञ है यदि है कहो तो प्रमाण क्या है। यदि कहो कि (होमो दैवः) होम देवयज्ञ है तब अग्निहोत्र भी होम होने से देवयज्ञ होगया, तो क्या तो क्या अन्य यज्ञोंमें वा संस्कारों में होम नहीं होता यदि होता है तो क्या वे सभी यज्ञ वा संस्कार देवयज्ञ माने जावेंगे। यदि ऐसा है तो पञ्चमहायज्ञोंसे भिन्न कोई अन्य वा होम यज्ञ क्या नहीं है तब पारस्करादि गृह्यसूत्रकारोंने उन का पृथक् २ विधान क्यों किया ? ॥

१४१-क्या शतपथ ब्राह्मणके द्वितीय काण्ड में लिखा अग्निहोत्र का विधान तुम लोग मानते हो। यदि नहीं मानते तो किस विधिसे और किस २ मन्त्रसे अग्निहोत्र करना चाहिये इसके लिये क्या किसी वेद मन्त्रका प्रमाण दे सकते हो। यदि वैसा प्रमाण भी नहीं तो तुम्हारा मनःकल्पित अग्निहोत्रविधि वेदविरुद्ध क्यों नहीं है। ?

१४२-बलिवैश्वदेव किसी एक कर्म का नाम है तो किस का है। भोजन के लिये पकाये अन्नकी अग्निमें जो आहुति दी जावे उनको तुम शास्त्रानुकूल देवयज्ञ क्यों नहीं मान लेते ?

१४३-मनुस्मृतिके प्रमाणानुसार जब तुम पंचहामयज्ञ मानते हो तो (मनु० अ० ३। ६७ वैवाहिकेग्नौ कुर्वीत०) प्रमाणके अनुसार क्या विवाह समयका अग्नि स्थापित करके उसी में पञ्चमहायज्ञ करते हो। यदि ऐसा नहीं करते तो तुम्हारा पञ्चमहायज्ञ करना मानना मनु० के प्रमाण से भी विरुद्ध क्यों नहीं हुआ ? ॥

१४४-पूर्वादि दिशाओंमें सेवकादि सहित इन्द्रादिदेवों के नामसे जो तुम ग्रास रखते हो उनसे क्या मतलब है। वे वलि किस २ को दी जाती और कैसे पहुंच जातीं हैं। यदि इन्द्रादि ईश्वरके नाम हैं तो उस दिशामें उस २ नामका ईश्वर क्या खण्डित हो गया हैं। यदि ऐसा है तो वह साकार क्यों न हुआ। अथवा इन्द्रादि किसी समाजी के नाम हैं तव क्या उन २ कों पूर्वादि दिशा में खिलाने को वैठा के एक ही एक ग्रास खानेको देतेहौ ? ॥

१४५-लकड़ीके वनाये उखली मूसल के पास जो तुम एक ग्रास रखते हुए हाथ-जोड़ के कहते हो कि (वनस्पतिभ्यो नमः-मुसलोलूखले) हे ऊखली, मूसल ! वनस्पतिकी लकड़ीसे बने हुए तुम को नमस्कार है। सो क्या ऊखली मूसल उस को खाते वा प्रसन्न होते हैं? क्या यह ऊखली मूसलकी पूजा नहीं है। ऐसी हालत अपनी होते हुए भी मूर्त्तिपूजाके खण्डनमें तुमको लज्जा क्यों नहीं होती है ? ॥

१४६=तुम्हारी संस्कारविधिके आरम्भमें ही (संस्काराः षोडशैव हि) लिखा है। सो यह वताओ कि संस्कारोंके सोलह होने में प्रमाण क्या है ?। १६ से अधिक वा कम क्यों नहीं हैं। स्मृति का प्रमाण वेदानुकूल सिद्ध करने पर माना जा सकता है। इससे मूल वेद से संस्कारोंके १६ होने का प्रमाण दीजिये ॥

१४७-स्वा० द० ने १६ संस्कार होने की प्रतिज्ञा करके १७ क्यों छपाये। जिसको सन्देह हो वह आ० समाजकी संस्कारविधिमें गिनकर देख लेवे कि अवतक भी १६ संस्कारोंकी प्रतिज्ञा वनी है और १७ छपते जाते हैं। १-गर्भाधान, २-पुंसवन, ३-सीमन्त -४-जातकर्म, । ५-नामकरण । ६-निष्क्रमण। ७-अन्नप्राशन

८-चूड़ाकर्म। ९-कर्णवेध। १०-उपनयन। ११-वेदारम्भ १२-समावर्त्तन। १३-विवाह। १४-गृहाश्रम। १५-वानप्रस्थ। १६-संन्यास। १७-अन्त्येष्टि। ये सत्रह संस्कार पृथक् २ हेडिंग सहित प्रतिज्ञासे विरुद्ध अब तक क्यों छपते हैं ? ॥

१४८-मनु० अ० २ में लिखा केशान्तसंस्कार स्वा० द० ने क्यों नहीं लिखा यदि वह भी लिखा जाता तो १८ संस्कार क्या नहीं होते। तब १६ ठीक हैं वा १८ अठारह ॥

१४९-कर्णवेध संस्कार जब मनुमें नहीं है तो स्वा० द० ने किस प्रमाणसे मानलिया ?। क्या इसके लिये वेदका प्रमाण दे सकते हो॥

१५०-यदि विवाह गृहाश्रम को एक करके १७ का दोष मेटना चाहो तो उपनयन वेदारम्भ एक समय में होने के कारण दोनों एक हो जावेंगे। तब १६ भी न रहेंगे। यदि कहो कि उपनयन वेदारम्भ का कर्म अलग २ होगा तो विवाह गृहाश्रमके कर्म भी एक साथ नहीं हो सकते क्या वेदि पर ही गृहाश्रमके काम होने लगते हैं ? ॥

१५१-संस्कारविधिके आरम्भ के तीसरे श्लोकमें स्वा० द० ने संस्कारों का प्रयोजन आत्मा और शरीरकी शुद्धि माना है। सो क्या आत्मा अशुद्ध हो जाता है। क्या आत्मा वस्त्रादि के तुल्य शुद्ध हुआ करता है। तथा अन्त्येष्टि संस्कारसे किसकी शुद्धि होती है क्योंकि शरीर तो नष्ट हो गया तब जो रहा ही नहीं वह शुद्ध कैसे होगा ?। यदि मृतकका आत्मा अन्त्येष्टिसे शुद्ध होता है तो शुद्धि प्रसन्नताके एक होने से प्रसन्नता रूप फल भी श्राद्धादिके द्वारा मृत आत्माको क्यों प्राप्त नहीं हो सकता ? ॥

१५२-संस्कारविधि पृ० ३।

कृतानीहविधानानि ग्रन्थग्रन्थनतत्परैः।
वेदविज्ञानविरहैः स्वार्थिभिः परिमोहितैः ॥
प्रमाणैस्तान्यनादृत्य क्रियते वेदमानतः॥

अर्थात् संस्कारोंके विषयमें अज्ञानी स्वार्थी मूर्ख लोगों ने जो संस्कारों के अनेक विधान किये हैं प्रमाणों द्वारा उनका खण्डन करके हम वेदानुकूल संस्कार विधान करते हैं। इस पर यह पूछा

जाता है कि स्वार्थी अविद्वानोंने संस्कारभास्कर दशकर्म पद्धति आदि जो २ ग्रन्थ बनाये हैं। स्वा०द० ने उनका खण्डन किन प्रमाणों से किस २ ग्रंथके किस २ पृष्ठमें कब किया है यदि कहीं नहीं किया तो तुम लोग ऐसे मिथ्या लेख पर हरताल क्यों नहीं लगा देते ?॥

१५३-संस्कारविधि में लिखा है कि सब संस्कारोंके आरम्भमें (विश्वानिदेव०) इत्यादि आठ मन्त्रों से ईश्वरस्तुति प्रार्थनोपासना कोई करे। इस पर एक तो यह पूछना है कि क्या निराकारकी स्तुति प्रार्थनोपासना हो सकती है। क्या निराकार वाणीका गम्य हो सकता है। (न तत्र वाग्गच्छति) ईश्वरमें वाणीकी गतिका निषेध किया तो स्तुति करना बधिरके सामने व्यर्थ दुःख रोने वा अरण्य रोदनके तुल्य व्यर्थ क्यों नहीं है। यदि मङ्गलार्थ कहो तो मङ्गलाचरण का खण्डन तुम्हारे मतमें स्वा० दयानन्द ने किया है। और आदिमें मङ्गल मानोगे तो क्या बीच २ अमङ्गल न होगा ?॥

१५४-स्वस्तिवाचन पदका अर्थ क्या है ?। जिसके यहां संस्कारादि कोई उत्सव हो वह पहिले (स्वस्तिनइन्द्रो) इत्यादि मन्त्रों को कहे वा पढ़े। यदि यही मतलब है तो स्वस्तिवचन शब्द होना चाहिये। और यदि (पुण्याहवाचनादिभ्यो लुक्) इस वार्त्तिक सूत्र के अनुसार एक खास कर्मका नाम ब्राह्मणों द्वारा विधिपूर्वक स्वस्ति कहलाने से होता है। प्रयोजनार्थ में विहित छ प्रत्यय का लुक् वार्त्तिक ने दिखाया है। उसमें यजमान और ऋत्विज् ब्राह्मणों के बोलने के नियत वाक्य होते हैं। यजमान कहता है (भो ब्राह्मणाः स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु) तब यजमानकृत प्रेरणार्थ णिच् होनेसे वाचन पद बनता है। यदि शास्त्रोक्त इस विधि के अनुसार स्वस्तिवाचन का अर्थ तुम लेना चाहते हो तो क्या वैसा करते मानते हो ? जब कि न वैसा करते न मानते हो तो वैसा नाम क्यों लिखा है ?। क्या इसका जवाब सप्रमाण दे सकते हो ?॥

१५५-क्या आरम्भ में स्वस्ति कह लोगे तो बीच में वा अन्त में अकल्याण न कूद पड़ेगा। फिर वहां भी कहलोगे तो क्या कर्म के

चीन्चर मिनट २ में वा पल२ में अकल्याण न घुसेगा तब क्या पग२ में स्वस्ति स्वस्ति ही गाया करोगे। यदि ऐसा कुतर्क मङ्गलाचरण के खण्डनार्थ तुमने उचित समझा है तो क्या इससे तुम्हारे स्वस्तिपाठ का खण्डन नहीं हो जाता है ?॥

१५६-जैसे कारीगर अन्योंको मारने काटने के लिये शस्त्र बनाता और उनसे अपना भी गला काट सकता है वैसेही तुम्हारे निर्मित कुतर्कोंसे प्रत्यक्ष तुम्हारा खण्डन होजाना क्या अभी नहीं जानपाया॥

१५७-क्या संस्कारादि मङ्गलकार्यों में शान्तिवाचन का प्रयोग उचित है। मरणादि भयंकर उपद्रवों की शान्तिके लिये होनेवाला शान्तिवाचन संस्कारों में कैसे उचित है ? क्या तुम इसका उत्तर दे सकते हो ?॥

१५८-सं० विधि पु० में जो १६ हाथ की यज्ञशाला बनाना लिखी है सो क्या संस्कारों में बनाते हो। क्या संस्कारों का नाम यज्ञ है। १० हाथ ऊंची यज्ञशाला की छत्त हो २० वा १२ खम्भे उसमें लगाये जावें। ऐसी यज्ञशाला के लिये क्या वेदमें प्रमाण लिखा है यदि नहीं लिखा तो यह स्वा० द० की कपोल कल्पना वेद विरुद्ध क्यों नहीं है। ऐसी कल्पित बातें लिख २ कर स्वा० द० ने संसार को धोखा क्यों दिया है ?॥

१५९-यज्ञ देश विषय में (उन्नतमम् । समम् । अविभ्रलि तथा विंशत्यरत्निः शालास्यात्तदर्धेन तु विस्तृता) इत्यादि यज्ञशाला के प्रमाणों से क्या स्वा० द० की शत्रुता थी। अथवा श्रौत कल्पसूत्रादि की कान पूंछ जानी ही नहीं थी सब काम प्रमाण विरुद्ध लिखने से क्या यह सिद्ध नहीं होता कि स्वा० दयानन्द को मनमाना वेद-विरुद्ध मत चलाना ही था क्या इसका तुम कुछ अन्य उत्तर दोगे॥

१६०-यज्ञ मण्डप और यज्ञशालाका स्वा०द०ने जैसा विधान लिखा है उसको सत्य मानते हो तो किसी वेदमन्त्र के प्रमाणसे सिद्ध करो अन्यथा कल्पसूत्रों से विरुद्ध स्वा० द० के लेख पर हरताल क्यों नहीं लगा देते ?॥

१६१–यज्ञकुण्ड का जैसा विचार स्वा० द० ने लिखा है। क्या यह मनमाना कल्पित नहीं है ? यदि प्रमाणानुकूल है तो वेदके प्रमाण से सिद्ध करो। और किस २ यज्ञमें कैसा २ कुण्ड हो सो बताओ।

१६२–होम का द्रव्य कस्तूरी आदि होने में क्या प्रमाण है। क्या कस्तूरी में हिंसा नहीं है। हिरण के मारे जाने विना क्या कस्तूरी प्राप्त होसकती है ? यदि न होगी तो मांस के तुल्य क्यों नहीं है। क्या किसी वेद मन्त्र में कस्तूरी का तथा अगर तगरादि का होम करना लिखा है तो वैसा प्रमाण क्यों नहीं देते ॥

१६३–संस्कारवि० पृ०१६ में लिखा स्थालीपाक का विचार क्या प्रमाणानुकूल है। किसी ग्रन्थमें वैसा विचार कोई दिखा सकता है। स्थाली नाम बटलोई व डेगची का है उसमें पकाया भात आदि स्थालीपाक कहाता है। क्या मोहनभोग तथा लड्डू भी बटलोई में ही आ० समाजियों के यहां पकाये जाते हैं ? यदि नहीं पकाये जाते तो मोहन भोगादि का नाम स्थालीपाक कैसे होसकेगा ? क्या खिचड़ी भी होम में चढ़ाने का लेख है। जब खिचड़ी का होम प्रामाणिक नहीं तो मिथ्या क्यों लिखा ? । " होम के सब द्रव्यको यथावत् शुद्ध अवश्य कर लेना " (देवस्त्वा०) मन्त्रका यही अर्थ है। यदि है तो किस २ पदसे क्या अर्थ निकला सो बताओ ॥

१६४–यज्ञपात्र विषयमें कातीय श्रौतसूत्रोंको बिगाड़के कुछ का कुछ (बाहुमात्र्यः०) इत्यादि अशुद्ध संस्कृत स्वा०द० ने लिखा है यदि स्वा० द० ने कल्पसूत्रोंको देखा जाना होता तो ऐसा अशुद्ध क्यों लिखते। तब ऐसे अज्ञात पुरुषको महर्षि महाविद्वान् कहना मानना क्या प्रबल अज्ञान नहीं है ? ॥

१६५–जिनकी प्रतिकृति संस्कार विधि पु० में छपाई हैं वे यज्ञपात्र किसी आ० समाजी के किसी काममें आते वा आसकते हैं। क्या पुरोडाशादि बनते तथा उन को कोई आ० स० बनवाना जानता है। शम्या, अन्तर्धानकट, शृतावदान, प्राशित्रहरण, उपवेष, षडवत्त, इत्यादि पात्रोंके कामोंको क्या कोई समाजी जानता और मानता है॥

१६६–पारस्कर आश्वलायनादि सूत्रों में ऋत्विग्वरण का विधान जब विद्यमान है तो उस शास्त्रोक्त विचार से विरुद्ध मन मानी

ऋत्विग्वरण की रीति स्वा० द० ने क्यों लिखी है ? । क्या इस बात का ठीक २ सत्य उत्तर कोई दे सकता है ॥

१६७-संस्कारविधि के सामान्य प्रकरण में लिखा है कि " होम करने को बैठे सब मनुष्य (अमृतोपस्तरणमसि०) आदि तीन मन्त्र पढ़के आचमन करें । सो इन मन्त्रोंसे होमारम्भ में किसी आचार्य ने आचमन नहीं कहा यही दोष नहीं किन्तु आर्थिक दोष और बड़ा है । भोजन सूत्रों में भोजन के आरम्भ में आचमन करने का यह पहिला मन्त्र है और भोजनान्त आचमन में विनियुक्त दूसरा है । वैसा ही उन दोनों मन्त्रों का अर्थ है । यदि स्वा० द० को ऋषि आचार्य कोटि में मानके उनके किये विनियोगोंको प्रामाणिक मानो तो स्वा० द० ने संसारको यह धोखा क्यों दिया कि हमारा कथन मनमाना नहीं है किन्तु पूर्वज ऋषियों के सर्वथा अनुकूल है ॥

१६८-और क्या यह भी ठीक है कि आचमन कण्ठ में कफ आजाने पर उसको हटाने के लिये है । यदि कण्ठमें कफ न हो तो आचमन करना व्यर्थ है वा नहीं ? । जब थूक देने से कफ निकल जा सकता है तब उसको भीतर पेट में पहुंचाने के लिये स्वा० द० का आचमन बताना क्या यह सिद्ध नहीं करता कि आ० समाजी थूका न करें । किन्तु जब २ कण्ठ में कफ जान पड़े तब २ झटपट आचमन करके कफ को निगल लिया करें ॥

१६९-संस्कार विधि में लिखे अनुसार होम से पहिले (वाङ्म आस्येस्तु०) इत्यादि मन्त्रों से जल लेकर अङ्गों का स्पर्श क्यों करे क्या ये किसी वेद के मन्त्र हैं वा नहीं । क्या नाक कान आदि की परताल की जाती है कि कहीं कोई कौवा कान तो नहीं लेगया ॥

१७०-सं० वि० पृ० २३ में अग्न्याधान और समिधा चढ़ाने के मन्त्रों का विनियोग जैसा २ लिखा है क्या वैसा ही तुम नित्य होम वा संस्कारों के होम में करने के लिये किसी सूत्रादि ग्रन्थके प्रमाण से दिखा दोगे । अथवा कहीं किसी वेद मन्त्र में ऐसा लिखा है ? यदि कहीं भी ऐसा नहीं लिखा तो स्वा० दयानन्द का ऐसी आज्ञा लिखना वेद विरुद्ध क्यों नहीं है ? ॥

१७१–चारों वेद के सब सूत्रों और सब ब्राह्मणस्थ श्रुतियों की एक ही सम्मति है कि गृह्य श्रौत सब होमों तथा यज्ञोंमें आघारों की दो आहुति सब से पहिले होतीं और उसके बाद दो आहुति आज्यभागोंकी होतीं हैं। पर संस्कारविधि पृ० २५ में इससे विरुद्ध प्रथम आज्यभागाहुति लिखी तत्पश्चात् आघाराहुति लिखीं हैं। क्या कोई समाजी जन्मान्तरमें भी ऐसा प्रमाण वेदादिशास्त्रोंका दिखा सकता है। और क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि स्वा० द० को तो इतना बोध ही न था कि होम के सम्प्रदाय में पहिले पीछे किस २ क्रम से कौन २ आहुति होनी चाहिये। यदि बोध होना मानो तो मानना पड़ेगा कि सभी अंशोंमें उनको मनमाना वेद विरुद्ध मत चलाना था॥

१७२–पृ० २६ में स्विष्टकृत् आहुतिके पश्चात् प्राजापत्याहुति लिखी सो भी सब ग्रन्थों से विरुद्ध है, प्राजापत्य होम के पश्चात् सर्वत्र ही स्विष्टकृत् आहुति का नियम है। क्या कोई समाजी स्वा० द० के इस लेख को शब्द प्रमाणानुकूल सत्य ठहराने का दम रखता है ?॥

१७३–सं० वि० पृ० २७ में लिखी (अग्नेत्वन्नो०) इत्यादि मन्त्रों से आठ आहुति स्वा० द० ने सब कर्मोंमें मानी हैं। सो भी पारस्कर गृह्यादि से यह विरुद्ध है। क्योंकि विवाहादि किसी २ खास २ कर्ममें आठ और अन्यत्र सर्वप्रायश्चित्त होम की पांच आहुति आचार्योंने मानी हैं। क्या समाजी लोग सर्वत्र आठों करने के लिये किसी आचार्य का प्रमाण दे सकते हैं ? ॥

१७४–जब कि आश्वलायन वा पारस्करगृह्यसूत्रादि, किसी के भी अनुसार स्वा० द० का गर्भाधानादि एक भी संस्कार ठीक नहीं है तब संस्कारों के आरम्भ में कहीं २ आश्वलायन पारस्कर गृह्यसू० आदि के कोई २ सूत्र प्रमाण साधारण मनुष्योंको धोखा देने के लिये क्यों लिख दिये गये हैं ? ॥

१७५–स्वा० द० के मत से विवाह और गर्भाधान दोनों संस्कार एक ही दिन एक ही रात्रि में एक ही साथ होने चाहिये। ऐसी दशा में विवाह का एक अङ्ग गर्भाधान हो सकता है। तब एक

संस्कार और भी घट जायगा। क्या कोई समाजी विवाह गर्भाधान दोनों एक ही रात्रि में करने का प्रमाण कहीं वेदादि शास्त्रों में दिखा सकता है॥

१७६-सं० वि० पृ० ३७ से लिखी (अग्नयेपव०) इत्यादि आहुति गर्भाधान के समय देनेकी आज्ञा किस गृह्यसूत्रादि ग्रन्थ में है ? क्या कोई समाजी इस के लिये प्रमाण दे सकता है। तथा क्या बता सकता है कि स्वा० द० ने ऐसी मनगढ़न्त क्यों की है॥

१७७-चतुर्थी कर्म के समय कन्या के मस्तक पर जो अभिषेक पारस्करगृह्य में समन्त्र लिखा है उस को स्वा० द० ने सं० वि० में क्यों नहीं लिखा। क्या कोई समाजी इसका सत्य सत्य उत्तर दे सकता है।

१७८-चतुर्थी कर्म के समय वर अपनी वधू को चार ग्रास चरु अपने हाथ से प्राशन करावे ऐसा पारस्करगृह्यसूत्र में लिखा है। सो यह विचार गर्भाधान में क्यों छोड़ा गया। क्या स्वा० द० के मतमें गर्भाधानसे पृथक् चतुर्थी कर्म कर्त्तव्य है ? यदि है तो कब ?। क्या ग्रन्थोंका लेख, आचार्यों के प्रमाण सब पोप लीला हैं तब मनगढ़न्त केसब लेख लोप हैं लीला क्यों नहीं ?।

१७६-स० वि० पृ० ४१ में स्त्री पुरुष के संयोग का व्याख्यान खोलकर लिखा गया है। क्या बालब्रह्मचारी स्वा० द० इस विषय के मर्म को ठीक २ जानते थे। क्या अनुभव किया था। अनुभव किये बिना जान लिया तो अनुभव के पश्चात् ज्ञान होने का नियम कहां रहा ?। और ऐसा लिखते संन्यासी को संकोच वा लज्जा शर्म क्यों नहीं आई ?॥

१८०-पुंसवन संस्कार पृ० ४५ में (आ ते गर्भो०) इत्यादि मन्त्रों से होम लिखना किसी प्रमाणानुसार है वा मनमाना। यदि समाजियों में कोई संस्कृत का कान पूंछ कुछ समझता हो तो उक्त मन्त्र का अक्षरार्थ करके देखे कि यह मन्त्र पुंसवन में घटता है वा नहीं। यदि पुंसवन के होम में इसका विनियोग सत्य कहे तो गृह्यसूत्र का प्रमाण दिखावे।

१८१-सं० वि० पृ० ४५ में लिखा है (पुमांसौ०) इत्यादि मन्त्रों का वास्तव में क्या यही अर्थ है कि पुरुष को वीर्यवान् होना चाहिये और क्या स्त्री भले ही वीर्यवती न हो। आ० स० अपने हृदय पर हाथ धरके कहें कि स्वा० द० का यह लिखना सत्य है ? ॥

१८२-यदि कहो कि इन पारस्कर आश्वलायनादि सूत्र ग्रन्थों में मांसादि के विषय की अनेक बातें हैं जिससे वे सर्वांशमें मान्य नहीं हो सकते तो क्या इतिहास पुराणादि में भी अनेक प्रमाण तुम्हारे अनुकूल नहीं हैं ?। जब हैं तब पुराणों से शत्रुता क्यों मानते हो। जब पुराणादि के तुल्य सूत्र ग्रन्थों की भी कोई २ बातें जो तुम्हारे कल्पित नवीनमत के अनुकूल हैं वे ही मान लेते हो तब सूत्र ग्रन्थ मानने का धोखा सर्वसाधारण को क्यों देते हो ? ॥

१८३-सं० वि० पृ० ४७ में लिखा है कि पति अपनी पत्नीके केशों में सुगन्धित तैल डाले। सो क्या इसमें कोई वेदका प्रमाण है वा किसी गृह्यसूत्रादि में ऐसा लिखा है। अर्थात् ऐसी बात कहीं भी नहीं लिखी किन्तु इतर फुलेल लगाने वाले ऐयाश आ० समाजियों की प्रसन्नता के लिये स्वा० द० ने यह मनगढ़न्त लिखी है। क्या कोई दोनों आंखों वाले समाजी इस उक्तांश को किसी मान्य प्रमाण से सिद्ध करने का साहस रखते हैं ? ॥

१८४-सं० वि० पृ० ५१ में (कुमारं जातं पुराऽन्यैरालम्भात्०) इत्यादि आश्वलायन सूत्र लिखकर आगे स्वामी द० लिखते हैं कि "जब पुत्र का जन्म हो तब दायी आदि स्त्री लोग जरायु आदि पृथक् कर बालक को शीघ्र शुद्ध कर पिताको देवें तब पिता जातकर्म करे" सो क्या यह स्वा०द० का लिखना आश्वलायनादि के प्रमाणानुसार है। महर्षि आश्वलायन स्पष्ट कहते हैं कि पैदा हुए बच्चेको अन्यके छूनेसे पहिले बच्चे का पिता जातकर्म करे। और स्वा० द० कहते हैं कि पहिले दायी आदि शुद्ध करे। सो यह स्वा० द० का लिखना क्या आश्वलायनसे सर्वथा विरुद्ध नहीं है ?। जब स्वा० द० को ऋषियों से विरुद्ध अपना मनमाना ही मत चलाना था तो अपने

मत में विरुद्ध प्रमाण को क्यों लिखा। क्या संसार को धोखा देने की बात यह नहीं है ॥

१८५-पारस्कर गृह्य सू० १ । १६ (जातस्य कुमारस्याच्छिन्नायां नाड्यां मेधाजननायुष्ये करोति) उत्पन्न हुये बच्चे का नाल काटने से पहिले पिता मेधाजनन आयुष्य संस्कार करे तथा मनुस्मृति अ० २ में लिखा है कि-(प्राङ्नाभिवर्द्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते) नालच्छेदन से पहिले उत्पन्न हुए पुत्र का जातकर्म संस्कार करना शास्त्र विहित है इसी प्रकार सब शाखाके सब गृह्यसूत्रों और सब स्मृतियों की एकही राय है कि नालच्छेदन से पहिले जातकर्म होना चाहिये। पर एक स्वा० द० ने सं० वि० पृ० ५१ में नालच्छेदन के बाद जातकर्म लिखा है। क्या कोई भी आर्य्यम्मन्य इस कल्पित मतको किसी वेदादि प्रमाण के अनुकूल बता सकता है ॥

१८६-नालच्छेदनके बाद सूतक जन्य अशौच लगजाता है। इसी लिये किसी सूत्रादि में जातकर्मके साथ होम नहीं लिखा है। इससे होम लिखना स्वा० द० की मनमानी कल्पना है। क्या जात कर्ममें नालच्छेदनके बाद होम करने का प्रमाण कोई समाजी दे सकता है।

१८७-जब कि ऋषि तथा आचार्योंके कथनको तुम स्वतःप्रमाण नहीं मानते तो गृह्यसूत्रोक्त वाक्यों को स्वा० द० ने मन्त्र क्यों लिखा, क्या तुम लोग उन ग्रन्थोंको वेदवत् प्रमाण मानते हो ! ॥

१८८-आकारान्त विषमाक्षर स्त्रीका नाम रखनेके लिये क्या कोई वेदका प्रमाण है। यदि नहीं है तो ऐसा नाम रखने का लेख तुम्हारे मतमें वेदविरुद्ध क्यों नहीं हैं। और कन्याका विषमाक्षर नाम रखने में युक्ति क्या है ?। ऐसा न करने से हानि क्या है ? ॥

१८९-ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्ण गुणकर्मानुसार मानते हो तो बालकोंके शर्मान्त वर्मान्तादि नाम क्यों कहे गये शर्मान्तादि नाम रखने की आज्ञासे उन २ का जन्मसे ब्राह्मणादि होना सिद्ध क्यों नहीं होता ?

१९०-पुरुषों के दो वा चार अक्षरों के नाम न रखके यदि तीन व पांच अक्षरका नाम रक्खे तो युक्तिसिद्ध दोष बताओ ! । क्या तुम्हारे मतसे तुलसीराम आदि नाम वेदविरुद्ध नहीं हैं ? ;

१६१-दशवें वा ११ ग्यारहवें दिन बालक का नाम क्यों रक्खे, क्या ऐसा वेद में लिखा है। जिस दिन बालक पैदा हो उसी दिन वा अगले दिन नामकरण कर लेने में दोष ही क्या है ?। जब मृतक की शुद्धि उसी दिन हो सकती है तब सूतक के लिये दश दिन क्यों मान लिये गये ?। क्या इसके लिये कोई वेद का प्रमाण है ? ॥

१६२-नामकरणमें स्वा० द० ने लिखा है कि "उसकी माता कुण्ड के समीप बालक के पिता के पीछे से आ दक्षिण भागमें होकर उस का मस्तक उत्तर दिशामें रखके बालकको पिताके हाथमें देवे" यह क़वायद स्वा० द० ने आर्यों से क्यों कराई है। ऐसा करने से क्या प्रयोजन है। क्या ऐसा वेदमें लिखा है। क्या यह पोपलीला नहीं है।

१६३-यदि यहां संस्कारों में पूर्वाभिमुख बैठने आदि के नियम को ठीक मानते हो तो सन्ध्योपासनादि के समय पूर्वादि दिशा में मुख करनेके नियम को माननेमें तुमको अजीर्ण क्यों होजाता है क्या इसपर वेद का प्रमाण दे सकते हो।

१६४-जिस तिथि और जिस नक्षत्र में बालक का जन्म हुआ हो उस तिथि और नक्षत्र के नामसे तथा तिथि और नक्षत्रके देवता के लिये आहुति क्यों देनी चाहिये ? क्या ऐसा वेद में लिखा है। क्या इससे देवता पक्षका मानना सिद्ध नहीं होता। और क्या तुम बता सकते हो कि इन तिथि नक्षत्रों के ब्रह्मादि देवता कौन २ हैं ? ॥

१६५-जब अपने २ कर्मोंके अनुसार सबको फल मिलता है तब बालक को आशीर्वाद व्यर्थ क्यों देते हो। क्या आशीर्वाद देने से उस के कर्म अच्छे हो जाते हैं। यदि नहीं हो जाते तो तुम्हारे मतमें सभी को आशीर्वाद देना व्यर्थ क्यों नहीं। यदि आशीर्वादसे अच्छा फल मिलता मानो तो कृतहान अकृताभ्यागम दोष क्यों नहीं है ॥

१६६-चौथे महीने में बालक का निष्क्रमण संस्कार क्यों करे। क्या ऐसा वेद में लिखा है ?। यदि नहीं लिखा तो वेद विरुद्ध क्यों नहीं है ?। अन्य किसी महीनेमें वा पहिले महीने में बालकको बाहर निकाले तो क्या दोष है। और यहां भी स्त्री से वैसी क़वायद क्यों कराई गई ॥

१९७-पुत्रके शिरका स्पर्श करना, उस के कानमें मन्त्र जपना, उससे कहना कि तू मेरे अङ्ग २ से उत्पन्न हुआ, मेरा आत्मा है, तेरा गुप्त नाम वेद है। क्या इन बातों को बालक सुनता है ? यदि नहीं सुनता समझता तो अन्धेको शीशा दिखानेके तुल्य व्यर्थ क्यों नहीं है।

१९८-(यददश्चन्द्रमसिकृष्णं०)यह मन्त्र क्या किसी मूल वेदका है। यदि सौत्र मन्त्र है तो वेद विरुद्ध मन्त्र तुम ने क्यों लिखा। और इस मन्त्र से निष्क्रमण संस्कार में स्वा० द०ने चन्द्रमा को अर्घ देना लिखा है। क्या इस कृत्यको आर्यसमाजी लोग ठीक मानते हैं। यदि ठीक मानते हैं तो सन्ध्योपासनके समय सूर्यनारायणको अर्घ देने में आ०समाजियों का पेट क्यों पिड़ता है ?।

१९९-छठे महीनेमें ही अन्नप्राशन क्यों करे। इसके लिये क्या वेदका प्रमाण दे सकते हो। यदि दांत उगने के कारण मानो तो दांतों से अन्न नहीं चबाया जाता किन्तु डाढ़ों से अन्न चबाया जाता है। इस लिये जब डाढ़ें उगा करें तब२ उस २ बालकका अन्नप्राशन युक्ति से होना चाहिये। ऐसी दशामें छठे महीने का नियम करना खण्डित क्यों नहीं हुआ। अब रहा हमारे मत का विचार सो (षष्ठेऽन्नप्रशनंमासि०) इत्यादि प्रमाण हमको निर्विवाद निर्विकल्प मन्तव्य हैं। इस से कोई दोष नहीं है॥

२००-भात रांधने और आहुति देने की कल्पना जैसी स्वा० द० लिखते हैं। वैसी ज्योंकी त्यों कल्पना क्या तुम किसी ग्रन्थमें दिखा सकते हो। जब कि पारस्कर गृह्यादि के अनुसार विधि लिखने से स्वा० द० पर और भी कम आक्षेप हो सकते थे तब उन्होंने सर्वत्र अपनी मनमानी कल्पना क्यों चलायी क्या इससे स्वा०द०का कल्पित नया मत चलाना सिद्ध नहीं होता ?॥

२०१-चूड़ाकर्म आठवां संस्कार क्योंहै क्याइसमें वेदका प्रमाण है। पहिले वा तीसरे वर्षमें मुण्डन क्यों करावे। क्या द्वितीय वर्ष में बाल नहीं कटेंगे। यदि आश्वलायनादिके प्रमाणोंसे पहिले तथा तीसरेमें करना ठीक मानते हो तो वे प्रमाण वेदानुकूल क्यों कर होसकते हैं।

२०२–चार शरावोंमें जौ तिल चावल उड़द भरके वेदीके उत्तरमें क्यों रक्खे। चार शरावों के रखनें से क्या लाभ है, यदि अन्य कोई ऐसी बात लिखे तो तुम पोपलीला कहते हो तब स्वा० द० का ऐसा लिखना पोपलीला क्यों नहीं है। यदि सूत्रमें लिखा कहो तो वह सूत्र वेद विरुद्ध क्यों नहीं है ॥

२०३–नाई की ओर देख के (आयमगन्त्सविता०) इस मन्त्रका जप क्यों करे। क्या नाई इस मन्त्रको सुनके कुछ समझ लेता है और क्या वेद में लिखा है कि नाई की ओर देखके मन्त्र पढ़े। जैसे कोई नाई को देख कर अंगरेजो वा अरबी में कुछ कहे वैसा ही वेहूदापन का व्यवहार यह क्यों नहीं है। यदि नाईको कोई बात समझानी हो तो जिस भाषा को वह जानता हो उसी में क्यों न कहे ? ॥

२०४–(ओषधेत्रायस्व) इस मन्त्र से तीन दाभ लेकर बालक के केशों में लगाके कहे कि हे ओषधे हे कुश तू इस की रक्षा कर। कुश से ऐसा क्यों कहा गया ? क्या कुश बालककी रक्षा कर सकता है। यदि कर सकता है तो मूर्त्तिपूजादि कामोंकी निन्दा क्यों करते हो॥

२०५–सं० वि० पृ० ६८ में स्वा० द० ने लिखा है कि मुण्डन के समय (विष्णोर्द्दंष्ट्रोऽसि) मन्त्र से क्षुरे (अस्तुरे) की ओर देखता हुआ कहे कि हे क्षुरा तू विष्णु की डाढ़ है। सो क्या यह निराकार विष्णु की डाढ़ है वा किसी साकार की। क्या वास्तव में यह क्षुरा विष्णु की डाढ़ है ऐसा तुम सिद्ध कर दोगे। क्या यह लोपलीला नहीं है ? ॥

२०६–सं० (शिवो नामासि०) मन्त्र पढ़के क्षुरे को दहिने हाथ में लेवे और क्षुरे से कहे कि हे क्षुरा (अस्तुरा) तेरा नाम शिव है, तेरे पिता का नाम स्वधिति है, तुझ को नमस्ते करते हैं, तू मुझे मत मारियो। ऐसी प्रार्थना आ० समाजी लोग क्या क्षुरे से नहीं करते कराते हैं ? । और क्या स्वा० द० ने ऐसा नहीं लिखा है। क्या आ० समाजी बाल बनवाते समय क्षुरे को नमस्ते किया करते हैं। यदि

नहीं करते हों तो स्वा० द० का उपदेश मान के हजामत के समय छुरे को पहिले नमस्ते किया करें॥

२०७-फिर (स्वधिते मैनꣳहिꣳसीः) हे देवतों के हथियार वज्र रूप अस्तुरा तू इस बालक को मत मारना ऐसा स्वा० द० ने लिखा है कि इस मन्त्र को पढ़के क्षुरे को केशों के समीप ले जावे । क्या क्षुरा बालक को मार सकता है ? । आ० समाजियों को उचित है कि वे आगे स्वा० द० की भूल मानकर क्षुरे से कुछ न कहें किन्तु नाई से प्रार्थना किया करें कि हे नाई तू इस बालक के क्षुरा मत लगा देना । क्या ये बातें समाजी मन के अनुकूल हैं ? । क्या ऐसे लेखों से तुम्हारा मत ऊटपटांग सिद्ध नहीं होता ? ॥

२०८-फिर स्वा० द० लिखते हैं कि (येनावपत्सविता०) इस मन्त्रसे कुशों सहित बाल काटे और कहे कि विद्वान् सविता देवने जिस क्षुरासे सोमराजा के और वरुण देवता के बाल बनाये थे उसी क्षुरा से इस बालक के बाल बनाओ । क्या स्वा० द० का यह कहना ठीक है । क्या यही क्षुरा अनादि कल्प कल्पान्तरसे चला आता है । तुम्हारे मत में अब तक तीन ही अनादि थे अब क्या यह चौथा क्षुरा अनादि नहीं बनेगा तथा सविता ने सोम और वरुण के बाल कब बनाये थे, वही क्षुरा तुम को कैसे और कहां से मिल गया ? ॥

२०९-पारस्कर आश्वलायनादि सब गृह्यकारआचार्योंने विवाह के पश्चात् कम से कम तीन दिन तक कन्या वरों को ब्रह्मचारी रहने के लिये लिखा है । और सब आचार्यों से विरुद्ध स्वा० द० ने रात को दश बजे विवाह कराके उसी दिन उसी समय दोनों का संयोग [हम बिस्तर] कराना लिखा है सो क्या यह लोक वेद सभी से विरुद्ध घृणित निन्दित स्वा० द० का लेख नहीं है । क्या ऐसे लेखों से आ० समाजी लज्जित नहीं होते हैं । वा क्या मूल वेद में ऐसा करने का प्रमाण दिखा सकते हैं । और क्या आ० समाजी विवाह की रात ही में संयोग कराते हैं ? । ॥

२१०-स्वा० द० ने संस्कारवि० पृ० ११७ में लिखा है कि "जब कन्या रजस्वला होकर शुद्ध हो जाय, तब जिस दिन गर्भाधान

की रात्रि निश्चित की हो उसी रात्रिको विवाहविधि करे,, सो क्या तुम लोग ऐसा ही करते हो। और ऊपर के लेख को सत्य मानते हो तो क्या वेदादि किसी भी ग्रन्थका प्रमाण ऐसा करने के लिये देसकते हो। यदि स्वा० द० के ऐसे कल्पित लेख को मिथ्या मानते हो तो उस पर हरताल क्यों नहीं फेर देते॥

२११-विवाह में यज्ञकुण्ड की चार और सात परिक्रमा के ऊपर जो तुम लोग विवाद किया करतेहो सो क्या तीन वा चार परिक्रमा करानेके लिये वेदका प्रमाण दे सकते हो परिक्रमा कराना पोपलीला क्यों नहीं है। जब सात परिक्रमा तुम को अच्छी नहीं लगती सातका खण्डन करते हो तब चार परिक्रमा किस युक्ति से ठीक हैं। यदि सूत्रका लेख कहो तो मूल वेदका प्रमाण न होने पर गृह्यसूत्र वेद विरुद्ध क्यों नहीं है॥

२१२-सप्तपदी तुम क्यों कराते हो इसमें युक्ति वा प्रमाण क्या है क्या ईशान को सात पग कन्या के चलाने से इष ऊर्ज आदि सात प्रकार के पदार्थ मिल सकते हैं क्या यह कार्यवाही तुम्हारे मत के अनुकूल है॥

२१३-जब स्वा० द० ने विवाह संस्कार के आरम्भ में पृ० ११७ में साफ २ लिखा है कि विवाह विधि इसी रीति से करें कि जिस से रात्रि को बारह बजे तक यह सब पूरा हो सके तब पृ० १३८ में (तच्चक्षुर्देव०) मन्त्र पढ़के आधी रात को सूर्य का दर्शन कराना क्यों लिखा है ?। क्या आ० समाजियों के विवाहमें आधीरात्रि के समय सूर्य उदय हो जाते हैं। यदि नहीं हो सकते तो दर्शन कैसे करे। क्या ऐसी बात का उत्तर तुम कभी दे सकते हो। और सूर्य का दर्शन क्यों करावे क्या प्रयोजन है। क्या मन्त्र पढ़के सूर्य का दर्शन कराना आ० समाजी मतके अनुकूल है और सूर्य का दर्शन कराने के बाद क्या दिन में ही गर्भाधान होगा।

२१४-सं० वि० पृ० ११७ में लिखे अनुसार एक घंटा रात्रि जाने पर कन्या वर को स्वा० द० ने (काम वेद०) इत्यादि मन्त्रों से

स्नान कराके विवाह कराया। डेढ़ दो घंटे में विवाह विधि हुआ विवाह विधि पूरा होने के पूर्व ही पृ० १६८ में (तच्चक्षुर्मन्त्र०) से सूर्यका दर्शन करा दिया कि जब सूर्यका उदय होजाना असम्भव था। फिर पृ० १६६ में तत्पश्चात् (सूर्य अस्त हुए पीछे आकाशमें नक्षत्र दीखें उस समय) विवाहकी उत्तरविधि करें। सो क्या समाजी लोग इस ऊंटपटांग को शोच समझ के लज्जित नहीं होंगे ?। प्रथम एक घंटा रात्रि जाने पर स्नान कराके विवाह विधिका आरम्भ कराया, फिर रात्रि में सूर्यका दर्शन कराया, तदनन्तर आध घण्टेमें सन्ध्या हो गयी। सूर्य दर्शन करानेके बाद ध्रुव और अरुन्धती नामक तारागण का दर्शन कराया क्या इत्यादि लेख परस्पर विरुद्ध और असंभव नहीं हैं॥

२१५–सं० वि० पृ० ११८ में (काम वेदते०) इत्यादि तीन मन्त्र स्वा० द० ने वधूवरको स्नान करनेके लिखे हैं। सो इन मन्त्रोंमें ऐसे कौन पद हैं जिनसे स्नान करने का अर्थ निकले। और इन मन्त्रों में दूसरे मन्त्र के पूर्वार्द्ध का अक्षरार्थ लिखनेमें हमें संकोच है। इससे (इमं त उपस्थं मधुना संसृजामि प्रजापतेर्मुखमेतद्द्वितीयम्) इस का अक्षरार्थ आ० समाजियोंसे कराया जाय तब आ० समाजी यदि संस्कृतज्ञ होगा तो लज्जासे मौन होजायगा और उक्त मन्त्रका अक्षरार्थ भाषामें न कहेगा॥

२१६–पृ० ११७ "जिस दिन गर्भाधान की रात्रि निश्चित की की हो उसी रात्रि में विवाह करने के लिये,, लिखकर जहां विवाह विधि पूरा हुआ वहां पृ० १४३ में स्वा० द० लिखते हैं कि "तत्पश्चात् दश घटिका रात्रि जाय तब वधू और वर पृथक् २ स्थान में भूमि पर बिछौना करके तीन रात्रि पर्यन्त ब्रह्मचर्य व्रत सहित रह कर शयन करें;, इन में यदि पहिले लेख को सत्य मानें तो यह पिछला मिथ्या है। यदि इस पिछले को सत्य कहें तो पहिला मिथ्या मानने पड़ेगा। सो हे समाजिन्! बताओ इन दो में स्वा० द० का कौन सा लेख झूठा वा कौन सत्य है ?॥

२१७–सं० वि० पृ० १७७ में स्वा० द० ने "अथ बलिवैश्वदेवविधिः,, लिखा है उस के नीचे (अग्नये स्वाहा) इत्यादि लिखा।

सो तुम बताओ कि अग्नि में होम करना देवयज्ञ कहाता है वा नहीं। यदि हां कहो तो होम को भूतयज्ञ नामक वलिकर्ममें मिलाना स्वा० द० की भूल क्यों नहीं है। यदि नहीं कहो तो देवयज्ञ भूतयज्ञ में क्या भेद है सो बताओ ॥

२१८-सं० वि० गृहाश्रम।प्रकरण (यस्याभावे०) इत्यादि मन्त्र में स्वा० द० ने जो इन्द्रकी पत्नी सीता लिखी है। सो क्या वेदभाष्य में लिखी वही [पटेला] खेत के ढेला तोड़ने की लकड़ी सीता है वा कोई अन्य, ऐसी दशा में वे इन्द्र कौन हैं जिन ने पटेला लकड़ी के साथ विवाह किया था। और तुम हर एक आ० समाजी इस इन्द्रपत्नी को अपने २ घर नियम से रखना चाहते हो तब क्या सब के यहां एक २ पटेला रक्खा है ॥

८-श्राद्ध तर्पण विषय।

२१९-तुम लोग श्राद्ध किसी खास कर्मको मानते हो तो विवाह यज्ञोपवीतादि के तुल्य उस का विधान किस ग्रन्थ में है। और उस की पद्धति कहां है ॥

२२०-"श्रद्धया यत्क्रियते तच्छ्राद्धम्,, ऐसा अर्थ मानते हो तो यह श्राद्ध का शाब्दिक अर्थ हुआ। तब श्राद्ध का लाक्षणिक अर्थ क्या है ?। अथवा क्या लाक्षणिकार्थ है ही नहीं। यदि शब्दार्थ को ही मुख्य मानते हो तो क्या विशेष प्राप्ति विशेष मेल अर्थात् किसी बालकको छातीसे लपटा लेने पर उसके साथ विवाह हुआ मानोगे।

२२१-क्या समाजी मत के अन्य कामों को श्रद्धा से करना तुम नहीं मानते हो तो उन सबका नाम श्राद्ध क्यों नहीं है। जब नित्य २ श्रद्धा से भोजन करते हो तो क्या वह भी श्राद्ध है ॥

२२२-तुम जीवितोंका श्राद्ध मानते हो तो मरोंका विवाह करना क्यों नहीं मान लेते। यदि मरों के विवाह को असम्भव तथा व्यर्थ कहो तो वैसा ही जीवितों का श्राद्ध तर्पण व्यर्थ वा असम्भव क्यों नहीं है क्या जीवितों का श्राद्ध कभी कहीं हुआ वा किसी ने किया और कहीं लिखा है ? ॥

२२३-स्वा० द० ने सन् ७५ के सत्यार्थप्रकाश में जितने जीवित हों उनके नाम से तर्पण न करे किन्तु जो २ मर गये हों उनके नाम से तर्पण करे लिखा है। सो इसको तुम प्रमाण क्यों नहीं मानते। यदि मानते हो तो जीवितों का श्राद्ध तर्पण कहना मिथ्या क्यों नहीं है। यदि कहो कि स्वा० द० ने ऐसा नहीं लिखा किन्तु छपाने शोधने वालों ने वैसा बना दिया है तो क्या तुम में से कोई भी समाजी वेद पुस्तक हाथ में लेकर शपथ के साथ कह देगा कि यह सत्य है ? ॥

२२४-जब अथर्व वेद १८। १। ४४। (असुंयईयुः०) मन्त्रांश का अर्थ प्राण वायुमात्र सूक्ष्म देहधारी पितर निरुक्त के अनुसार सिद्ध हो चुके हैं तो जीवित स्थूल देहधारियों में वह अर्थ कैसे घट सकेगा। क्या उस से मृत पितर सिद्ध नहीं हैं ॥

२२५-जब अथर्ववेद १८। २। ४९ (य आविविशुरुर्वन्तरिक्षम्) जो पितर बड़े अन्तरिक्ष लोकमें प्रवेश कर चुके। सो क्या तुम्हारे जीवित ही पितर अन्तरिक्ष में प्रवेश कर सकते हैं ?। यदि नहीं कर सकते तो मृतपितरोंका श्राद्ध तर्पण उक्त मन्त्रसे सिद्ध क्यों नहीं है।

२२६-जब अथर्ववेद १८। ३। ४४ में (अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत) यहां हविष् खाने के लिये उन पितरों को बुलाया गया है जो मरणानन्तर अग्नि में जलाये गये थे। क्योंकि (यानग्निरेवदह-न्त्स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः) जिन को जलता हुआ अग्नि चाट जाता है वे पितर अग्निष्वात्ता कहाते हैं यह अग्निष्वात्त पदका अर्थ शतपथ काण्ड २ में लिखा है तब वे अग्निष्वात्त पितर जीवित कैसे हो सकते हैं ?। इस प्रमाणसे मरों का श्राद्ध होना सिद्ध क्यों नहीं है। क्या तुम्हारे मत में जीवित ही जला दिये जाते हैं और क्या जल जाने पर भी वे लोग जीवित ही बने रहते हैं। यदि ऐसा हो तो किसी समाजी को दाह कर्म हो जाने पर क्या जीवित दिखा दोगे ?।

२२७-जब अथर्व० १८। ३। ६९ (यास्ते धाना अनुकिरामि तिलमिश्राः स्वधावतीः) यहां तिल मिले जौ पितरों के लिये बिखे-रना लिखे हैं सो क्या जीवितों के सामने बिखेरना उचित है और क्या इस से मृतश्राद्ध सिद्ध नहीं होता ?।

२२८-अथर्व० १८ । ३ । ७२ में (येतेपूर्वेपरागताः) जो पहिले पितर पूर्वकाल में व्यतीत हो गये उन के लिये भी तर्पण करना चाहिये । क्या इस प्रमाण से मरे हुए पितरों का श्राद्ध तर्पण सिद्ध नहीं होता । और क्या ऐसा कथन जीवितोंमें घट सकता है ? ।

२२९-अथर्व० १८ । ४ । ४८ में (मृताः पितृषु संभवन्तु) मरे हुए मनुष्य पितृयोनि में प्रकट हों उन्हीं के लिये श्राद्ध तर्पण होता है क्या यहां मूल वेदमें मृत शब्द नहीं है और क्या इस से मरों का श्राद्ध तर्पण सिद्ध नहीं होता ? ।

२३०-अथर्व० १८ । ४ । ६३ में (अधामासिपुनरायातनोगृहान्०) यहां पार्वणादि मासिक श्राद्ध में पितरों का विसर्जन करके महीने भर बाद फिर बुलाना कहा है सो क्या जीवित पितरों को तुम महीने २ में एक ही बार भोजन देते हो ? । क्या वे ऐसा करनेसे जीवित रह सकते हैं । यदि हां कहो तो वे कौन हैं ? । (नमः पितृभ्योदिविषद्भ्यः) अथर्व० १८ । ४ । ८० दिव्नाम स्वर्गलोक में रहने वाले पितरों को यहां नमस्कार कहा गया है । सो क्या जीवित ही समाजियों के पितर स्वर्ग में जाते हैं । यदि कोई जीवित स्वर्ग में जाते नहीं देखे जाते तो इस से मरों का श्राद्ध करना सिद्ध क्यों नहीं है ? ।

२३१-क्या तुम्हारे मत में जीवित पितरों को अपसव्य हो बायां घोंटू पृथिवी में टेक के दक्षिण को मुख करके भोजन दिया जाता है । और ऐसा क्यों करना चाहिये क्या इस का कुछ फल वा प्रयोजन प्रत्यक्ष में दिखा सकते हो । क्या इस प्रकार दिये भोजनको तुम्हारे जीवित पितर खा लेते हैं । क्या अशुभ नहीं मानते और ऐसा कृत्य पोपलीला क्यों नहीं है ? ।

२३२-क्या तुम लोग (अपराह्णः पितृणाम्) इस शतपथ प्रमाण के अनुसार भूखे पिताको भी दोपहर के बाद ही भोजन दोगे । और मनुष्य के भोजन का समय मध्यान्ह लिखा है तो क्या तुम्हारे जीवित पितर मनुष्य नहीं हैं जब कि मनुष्य हैं सो मनुष्यों और

पितरों का भिन्न २ समय क्यों रक्खा है ?। क्या इस से जीवित मनुष्योंसे पितरोंका भिन्न होना सिद्ध नहीं है।

२३३-जब शतपथ काण्ड २।३।४ में लिखा है कि (तिर इव वै पितरो मनुष्येभ्यः) मनुष्योंसे पितर छिपे नाम अदृश्य होते हैं। सो क्या जीवित मनुष्य पितर मनुष्यों से कभी छिपे नाम अदृष्ट रह सकते हैं। क्या इससे मृत पितरों के लिये श्राद्ध स्पष्ट सिद्ध नहीं है शतपथ में पिण्डदान के बाद पीठ फेर लेना लिखा है सो क्या तुम जीवित पितरोंको भोजन परोस कर उनकी ओर पीठ कर देना ठीक समझते और क्या वैसा करते हो॥

२३४-(स निदधाति-ये रूपाणि०) शतपथ २।३।४ में लिखा है कि (ये रूपाणि०) मन्त्र पढ़के पिण्डों के स्थानसे दक्षिण में एक अङ्गार रक्खे। सो क्या जीवित पितरोंके पास तुम मन्त्र पढ़के एक अंगार रखते हो ?। तब क्या गर्मी के दिनों में तुम्हारे पितर घबड़ाते नहीं हैं॥

२३५-ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकामें स्वा० द० ने अग्निष्वात्त का अर्थ अग्निविद्याको जानने वा अग्निसे विशेष कार्य साधन करने वाले अंजन के ड्राइवर आदि किया और आगरेके शास्त्रार्थ में समाजी उपदेशकों ने जले हुए मुर्दा के परमाणु अर्थ किया है। इन परस्पर विरुद्ध दोनों में कौन अर्थ सत्य है और दो में कौन एक मिथ्या है ?॥

२३६-क्या समाजी लोग अग्निष्वात्त पितरों को बुलानेके समय काले २ अंजन के ड्राइवरों का आवाहन करते हैं अथवा तु० रा०के किये अर्थानुसार जले हुए मुर्दाके परमाणुओंसे (अग्निष्वात्ताः पितर एहगच्छत सदः सदः सदत) कहते हैं कि हे जले हुए मुर्दा के परमाणुओ ! तुम लोग यहां आओ, अपने आसन पर बैठो और भोजन करो तथा भोजनके बाद हम को बहुत सा धन दे जावो। सो क्या मुर्दाके जले हुए परमाणु आते, आसनों पर बैठते, और भोजन करके धन दे जाते हैं। इससे क्या समाजियोंके पितर मुर्दा के जले हुए परमाणु सिद्ध नहीं है ?॥

२३७-ऋ० भा० भू० में स्वा० द० ने प्रतिज्ञा की है कि हम निरुक्त शतपथादि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के अनुकूल वेदार्थ करते और मानते हैं फिर अग्निष्वात्त पद का शतपथ से विरुद्ध मन माना व्याकरण की स्वरप्रक्रिया से भी विरुद्ध अर्थ किया है सो मिथ्या क्यों नहीं और ऐसा करने से स्वा० द० की पहिली प्रतिज्ञा का खण्डन क्या नहीं होगया। इसका तुम क्या जवाब रखते हो॥

२३८-संस्कार वि० समावर्त्तन-प्रकरण में लिखा है कि हाथ में जलले अपसव्य और दक्षिण मुख होके (ओंपितरः शुन्धध्वम्) इस मन्त्र से जल भूमि पर छोड़े " तुम क्या इससे भी जीवितों को जल दान मानोगे। यदि जीवितों का ही तर्पण मानना चाहते हो तो (भूमि पर जल छोड़े) को काटकर (पिताको भूमिमें लिटाके उसके मुखमें जल छोड़े) ऐसा क्यों नहीं बना देते हो। क्या स्वा० द० के ऐसा लिखने से मरों का तर्पण मानना सिद्ध नहीं है ? ॥

२३९-संस्कार वि० और पञ्चमहायज्ञ विधिमें (पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधानमः) मन्त्रसे एक ग्रास दक्षिण में रखने को लिखा है सो यह ग्रास वा भाग किनको दिया जाता और दक्षिणमें क्यों धरा जाता है। क्या इससे मृत श्राद्ध मानना सिद्ध नहीं है ? ॥

२४०-(आम्राश्चसिक्ताः पितरश्चतृप्ता एकाक्रिया द्व्यर्थकरी प्रसिद्धा) व्याकरण महाभाष्य के इस प्रमाण से भी मृत पितरों का तर्पण करना सिद्ध है। तब ऐसे प्रमाण वेदोक्त होने पर भी मरोंका श्राद्ध तर्पण मानने में तुम क्यों हिचकिचाते हो। क्या हमने मृत पुरुषों के श्राद्ध तर्पण की सिद्धि में वेदादिके जो अनेक प्रमाण दिये हैं उनके लिये तुम्हारा कोई उपदेशक वा पण्डित हाथमें वेद पुस्तक लेके शपथ कर सकेगा कि वे श्राद्ध के लिये सत्य २ प्रमाण नहीं हैं ॥

२४१-(तृतीया ह प्रद्यौरिति यस्यां पितर आसते। अथर्व० २८।२ ४८) यहां से ऊपर प्रद्यौ नामक तीसरा लोक है जिसमें पितर लोग रहते हैं। सो क्या तुम्हारे जीवित पितर कहीं आकाशमें लटका करते हैं। और मन्त्र में कहे वे ही पितर हैं जिनके लिये श्राद्ध तर्पण किया जाता है। तब क्या इससे जीवितों के श्राद्ध मानने का खण्डन नहीं होता ॥

२४२-सिद्धान्तशिरोमणि पु० को स्वा० द० ने प्रामाणिक माना है उसमें लिखा है कि (ततःशेषाणि कन्याया यान्यहानि तु षोडश। क्रतुभिस्तानितुल्यानि पितृभ्योदत्तमक्षयम्) क्या यह कन्या के सूर्य में होने वाले कनागत श्राद्धों के लिये आर्ष प्रमाण पर्याप्त नहीं है ॥

२४३-क्या तुम लोगों ने यह मिथ्या कुतर्क नहीं किया है कि राजा कर्णसे चलने के कारण कर्णागत कहाये फिर कनागत अपभ्रंश हो गया। इससे कर्ण राजा से पहिले कनागत श्राद्ध नहीं थे। क्योंकि जब सिद्धान्त शिरोमणि के प्रमाणानुसार कन्यागत शब्द से कनागत हुआ तब कनागत श्राद्ध सनातन अनादिकाल से होने सिद्ध होनेपर तुम्हारा कुतर्क मिथ्या सिद्ध क्यों नहीं हो गया। क्या अपनी ऐसी २ मिथ्या कल्पनाओं का निर्मूल खण्डन हो जाने से अब भी लज्जित नहीं होगे ॥

२४४-(श्राद्धे शरदः। पा० ४। ३। १२ शरदि भवं शारदिकं श्राद्धम्) पाणिनि आचार्य के व्याकरण का यह सूत्र है। अर्थ यह है कि शरद् ऋतु नाम क्वार कार्त्तिक में होने वाले श्राद्ध शारदिक कहाते हैं। यहां अन्य ऋतुओं के श्राद्धों का विचार छोड़के शरद् ऋतु के खास श्राद्धों का प्रमाण होनेसे क्या इन कनागतों का प्रचार पाणिनि आचार्य से भी पहिले अति प्राचीन काल से चला आना सिद्ध नहीं है ? ॥

२४५-यदि तुम्हारा यह मत है कि पुत्र के दिये श्राद्ध का फल पिता को नहीं पहुंच सकता तो—

मृतानामिह जन्तूनां, श्राद्धंचेत्तृप्तिकारणम्।
जीवितामिह जन्तूनां, वृथापाथेयकल्पनम् ॥

मरे हुए प्राणियों को यदि श्राद्धका फल मिल सकता है तो जीवित मनुष्य जब मुसाफ़िरी में जावे तब घर के मनुष्य श्राद्ध द्वारा उसकी तृप्ति मार्ग में क्यों नहीं कर सकते। इस नास्तिक चार्वाक के और तुम्हारे मत में क्या भेद है ?। यदि कुछ भेद नहीं तो तुम नास्तिक सिद्ध क्यों नहीं हुए ॥

२४६-तुम कहते हो कि मरे हुए पितादि को जन्मान्तर में श्राद्ध तर्पण का फल मिलने का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण वा उनके हाथ की रसीद नहीं आती तो फल पहुंचता है यह कैसे मान लेवें। तब तुम से पूछा जाता है कि अपने किये शुभाशुभ कर्मों का फल जन्मान्तर में अपने को मिलजाता है इसमें क्या प्रमाण है? । क्या इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण वा रसीद दिखा सकते हो। जब नहीं दिखा सकते तो यहां भी चार्वाक नास्तिक का मत (ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्) क्यों नहीं मान लेते ? ॥

२४७-तुम कहते हो कि पितादि ने बुरे कर्म किये तो उन को अपने कर्मानुसार ईश्वरव्यवस्था से दुःख मिलना नियत है, तब पुत्र यदि उनको दुःखसे छुड़ाना चाहता है तो ईश्वर की व्यवस्था नष्ट होगी ईश्वर की इच्छा से विरुद्ध होगा। यदि तुम्हारा ऐसा मन्तव्य है तो जीवित माता पिता गुरु आदि की सेवा शुश्रूषा भी तुमको नहीं करनी चाहिये। क्योंकि पिछले जन्म के कर्मों का जैसा २ शुभाशुभ फल ईश्वर ने उन को देना नियत किया है उस ईश्वरीय व्यवस्थामें बाधा डालने वाले तुम क्यों नहीं हुए ? । ऐसी दशामें जीवित माता पितादिकी सेवा भी तुमको छोड़नी क्यों नहीं पड़ेगी ॥

२४८-यदि कहो कि अन्य के द्वारा प्रत्यक्ष में तो फल मिल सकता हैं परोक्ष में नहीं। तब हम पूछते हैं कि तुम अपने निज घर स्त्री पुत्रादिकी कोई वस्तु उठाते लेते समय क्या यह विचारते हो कि अन्यके वस्तुको लेने का अपराध हमको लगेगा। यदि नहीं विचारते और ऐसा कहते मानते हो कि स्त्री पुत्रादिका वस्तु अन्य का नहीं, किन्तु हमारा ही है। हमारे स्त्री पुत्रादि अन्य नहीं किन्तु हम सब एक ही हैं। तो पुत्रादि जो उसके अंशरूप हैं उनको अन्य क्यों कहते मानते हो।

२४९-जब कि (आत्मा वै पुत्र नामासि) (आत्मा वै जायतेपुत्रः) इत्यादि श्रुति और (गर्भोभूत्वेह जायते) (भार्यापुत्रःस्वकातनूः) इत्यादि स्मृतियों में पुत्रसे पिता का अभेद वा एकता दिखाई है तब

तुम फूट रूप भेद वा अन्य २ होने का झगड़ा क्यों लगाते हो ॥

२५०-क्या तुम पिता का अंश पुत्रको नहीं मानते । जब अवयव रूप है तो हाथ मिहनत करके रोटी बनाता, मुख चबाने महीन करने में श्रम करता है पर हाथ कुछ भी नहीं खाता मुखको स्वाद आता और पेट कुछ भी मिहनत नहीं करता परन्तु भूख निवृत्तिरूप मुख्य फल पेटको ही होता है तब अन्य हाथके किये कर्मका फल अन्य पेटको क्यों पहुंचता है। क्या इन हाथ मुख पेटमें भी लड़ाई कराओगे ॥

२५१-तुम कहते हो कि मरजाने पर अन्यके किये कर्म का फल अन्य को नहीं पहुंचता तो यदि कोई राजा रईस दश लाख रुपयोंका किसी खासके नाम वा सभाके नाम वसीयत नामा कर जावे कि इस धन से अनाथालय, सदावर्त्त, वा पाठशाला आदि धर्म के अमुक २ काम किये जाया करें। और वे काम ठीक २ वैसे ही हों तो क्या उन कामों से होने वाले उपकारों का फल उस धन दाताको जन्मान्तरमें नहीं मिलेगा ? यदि कर्त्ताओंको मिलना कहो तो उनका कमाया धन नहींहै और जिसने वसीयतनामा किया उसको फल न मिले तो क्या ऐसा पुण्यका काम निष्फल होगा । फल पहुंचना मानना पड़ा तो उसी कायदेसे श्राद्धादिधर्म करनेके लिये पिता अपने पुत्रको धनादि सर्वस्व सौंपता है तब पुत्रकृत श्राद्धादि का फल पिता को क्यों नहीं मिलेगा ? ॥

२५२-जब उत्सर्गापवादादि वा सामान्य विशेष की व्यवस्थाको माने विना वेदादि किसी शास्त्रका काम नहीं चलता तो अन्य कृत कर्मका फल अन्यको नहीं होता । इसको उत्सर्ग वा सामान्य कथन मानके विशेषांशमें पुत्रादि सपिण्ड वा दौहित्रादि कृत श्राद्धादि का फल पितादिको पहुंचना अपवादरूप मानकर सब शास्त्रोंका विरोध मिट जाता और व्यवस्था लग जाती है । ऐसा मान लेने में तुम्हारी क्या हानि है ? ।

२५३-यदि तुम नास्तिकोंके सामने प्रत्यक्षादिसे श्राद्धादिको सिद्ध न कर सकने के कारण वेदोक्त श्राद्धादिके खण्डनका पाप अपने शिर

लादते हो तो क्या उसी कायदे से तुम्हारे अन्य मन्तव्य वेदादि का खण्डन नहीं हो सकता ॥

२५४-यदि तुम्हारा दावा हो तो अभ्युपगम सिद्धान्तको लेकर हम तुम्हारे वेदादि मन्तव्यका खण्डन करने का नोटिस तुमको देते हैं। तब क्या तुम वेदका मण्डन करने की शक्ति रखते हो ॥

२५५-जब स्वामी शङ्कराचार्य जी तथा कुमारिल भट्टादि बड़े २ नामी विद्वानों ने नास्तिकों के साथ बड़े २ प्रबल शास्त्रार्थ करते हुए भी श्राद्धादि सत्कर्मों का त्याग वा खण्डन नहीं किया तो नास्तिकों के भय से अपने वेदोक्त धर्म का त्याग करना क्या यह तुम्हारी निर्बलता नहीं है ॥

९--वर्णव्यवस्था विषय ।

२५६-गुण कर्म स्वभाव से वर्णव्यवस्था तुम मानते हो। जो स्वा० दयानन्द ने आर्य्योद्देश्यरत्नमाला पुस्तक में स्वभाव शब्दका अर्थ वस्तु के साथ नष्ट होना लिखा है सो वह स्वा० दयानन्द का लिखना मिथ्या है वा सत्य ॥

२५७-यदि मिथ्या कहो तो क्या स्वा० द० मिथ्यावादी सिद्ध नहीं हो गये। यदि सत्य कहो तो ब्राह्मणादि का स्वभाव मरण से पहिले बदल ही नहीं सकता तब तुम ब्राह्मणादि का शूद्रादि होना वा शूद्रादि का ब्राह्मणादि होना कैसे मान सकोगे ? ॥

२५८-तुम्हारे मतमें जन्मसे कोई ब्राह्मणादि नहीं किन्तु पढ़ लिख जाने पर २५ वर्ष की आयु में परीक्षा होने पर जो २ वर्ण ठहरे वह २ माना जाय तो (ब्राह्मणोऽस्यमुख०) इत्यादि वेदमन्त्र पर स्वा० द० ने उत्पत्ति के साथ ब्राह्मणादि शब्द क्यों लिखा। क्या वेद बनाते समय ईश्वर भी भूल गया था ? ॥

२५९-स्वा० द० ने वा तुमने कैसे वा किस प्रमाण से जाना कि विश्वामित्र जन्मसे क्षत्रिय थे फिर तपोबल से ब्राह्मण हो गये। यदि वाल्मीकीय रामायणादि से कहो तो वैसा लेख वेद में न होने से वह वेद विरुद्ध क्यों नहीं। और क्या विश्वामित्र सम्बन्धी सब इति-

हाल तुम मानते हो। यदि अपने मत से विरुद्ध को असम्भव कहो तो हमारे मत से विरुद्ध क्षत्रिय से ब्राह्मण होना भी असम्भव क्यों नहीं हो सकता ॥

२६०-जब,इतिहास पुराणों की कथा मानने पड़ी तो महाभारतमें लिखी विश्वामित्र की उत्पत्ति क्यों नहीं मान लेते। यदि नहीं मानते तो विश्वामित्र की उत्पत्ति कब और कैसे हुई इसके लिये क्या तुम कुछ प्रमाण रखते हो?। यदि नहीं रखते तो विश्वामित्रका जन्म से क्षत्रिय होना मिथ्या सिद्ध क्यों नहीं हुआ ॥

२६१-महाभारत में जो विश्वामित्र जी का जन्म से ब्राह्मण होना लिखा है उसको स्वा० दयानन्द ने देखा वा सुना होता तो विश्वामित्र को जन्म से क्षत्रिय क्यों लिखते। इस से स्वा० दयानन्द का भ्रम होना क्या सिद्ध नहीं होता ॥

२६२-क्या मतङ्ग का तपोबल से ब्राह्मण हो जाना जैसा स्वा० दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा है उसको तुम किसी प्रमाण से, सत्य सिद्ध कर सकते हो। जब सत्य नहीं ठहरा सकते तो स्वा० द० के ऐसे मिथ्या लेख से लज्जित क्यों नहीं होते ॥

२६३-जब महाभारत अनुशासन पर्व अ० २७ आदि में साफ २ लिखा है कि मतङ्ग ने बहुत सा तप करने पर भी ब्राह्मणत्व प्राप्त नहीं कर पाया, देवराज इन्द्र ने मतंग के ब्राह्मण होने का वर मंजूर नहीं किया तो मतङ्ग के ब्राह्मण हो जाने में क्या प्रमाण है?। यदि कोई प्रमाण है तो आर्यसमाजी बतावें। जब प्रमाण नहीं है तो सत्यार्थ प्रकाश के मतङ्ग के ब्राह्मण होजाने के लेख पर हरताल क्यों नहीं फेर देते? ॥

२६४-स्वा० द० ने स० प्र० में लिखा है कि "मातङ्ग ऋषि चाण्डालकुलसे ब्राह्मण हो गये थे" सो क्या यह बिलकुल मिथ्या नहीं नहीं है। मतंग को मातंग अशुद्ध लिखना, जो ऋषि नहीं था उस मतंग को ऋषि लिखना मतंग चाण्डाल कुल में भी नहीं था, किन्तु ब्राह्मण कुलमें पैदा हुआ था उसको चाण्डाल कुल लिखना, क्या स्वामी दयानन्दने सभी बातें मिथ्या लिखने का ही ठेका लिया

था। और क्या तुमने मिथ्या बातों को मानने का ठेका लिया है। क्या तुम लोगोंमें कोईसी माईका लाल ऐसा दम रखता है कि जो किसी सभा में मतङ्ग विषय की उक्त तीनों मिथ्या बातों को सत्य ठहराने का साहस कर सके॥

२६५-जब महाभारत के अनुशासनपर्व में साफ लिखा है कि मतङ्ग की माता ब्राह्मणी थी और प्रसिद्ध पिता भी ब्राह्मण था परन्तु नाई पुरुष से गुप्त व्यभिचार होजाने पर मतङ्ग अपनी ब्राह्मणी माता में पैदा हुआ था। सो यदि मतङ्ग को चाण्डाल कहना चाहो तो क्या किसी प्रमाणसे चाण्डाल के गुण कर्म मतंग में सिद्ध कर होगे, यदि नाईसे ब्राह्मणी में पैदा होने के कारण मतंगको चाण्डाल कहोगे तो जन्मसे वर्णव्यवस्था मानना क्या तुम्हारे गलेन पड़जायगी।

२६६-स्वा० द० ने स० प्र० में लिखा है कि "महाभारत में विश्वामित्र क्षत्रियवर्ण थे,, सो क्या तुम लोग महाभारत के किसी प्रमाणसे स्वा० द० के उक्त लेखको सत्य कर सकतेहो। यदि नहीं कर सकते तो उक्त लेख को मिथ्या माननेमें आगा पीछा क्यों करतेहो॥

२६७-स्वा० द० ने स० प्र० में लिखा है कि "जावाल ऋषि अज्ञात कुलसे ब्राह्मण होगये थे,, सो क्या यह युक्ति विरुद्ध अयुक्त बात नहीं। क्या कोई अपने कुल गोत्र का नाम नहीं जानता हो तो इतने ही से अन्य कुल गोत्र का होजाता है। क्या जो अपने बाप दादोंके नाम न जानता हो वह अन्य किसी का सन्तान हो जायगा?॥

२६८-छान्दोग्योपनिषद् में जब लिखा ही नहीं कि जावाल ब्राह्मण नहीं था वा अन्य कोई क्षत्रियादि वर्ण था तब सिद्ध है कि जावाल ब्राह्मण ही था, केवल गोत्र का नाम नहीं जानता था, गोतम ऋषि ने उसके स्वाभाविक जन्म से आये गुणों द्वारा जान लिया कि यह वास्तवमें जातिसे वा जन्म से ही ब्राह्मण है। ऐसी दशा में जावालके विषयमें स्वा०द० का लिखना सर्वथाही मिथ्या क्यों नहीं है।

२६९-(स्वाध्यायेन०) इत्यादि मनु के श्लोकमें आये (ब्राह्मी) पदका अर्थ स्वा० द० ने स० प्र० में ब्राह्मण का शरीर किया है। सो

(ब्राह्मोऽजातौ) इस पाणिनीय सूत्रके विद्यमान होते भी पण्डितों के सामने स्वा० द० के अर्थ को व्याकरणानुसार क्या तुम समाजी लोग सत्य सिद्धकर दोगे। यदि ऐसी शक्ति रखते हो तो कटिबद्ध क्यों नहीं हो जाते ॥

२७०-समाजी उपदेशक तु० रा० ने जावाल की माता को परिचारिणी पद आ जाने पर जो व्यभिचारिणी पद लिखा था सो क्या कोई भी समाजी छान्दोग्योपनिषद् के किसी भी शब्द से वा वाक्य से अथवा परिचारिणी पदके अर्थसे जवालाको व्यभिचारिणी सिद्ध करने की शक्ति रखता है। जब कि व्यभिचारिणी लिखना सरासर झूठ है तो ऐसे शुद्धार्थदूषक अपराधी को प्रायश्चित्त क्यों नहीं कराया ? ॥

२७१-जो २ ब्राह्मणादि वर्ण के मनुष्य ईसाई मुसलमानादि रूप से पतित हो जाते हैं उनके लिये स्वा० दयानन्द के मन्तव्यानुसार यह क्यों नहीं मान लेते कि जिस में स्वाभाविक शुद्ध ब्राह्मणपन है उसका वह स्वभाव एक ही जन्म में जब नहीं बदल सकता तो पतित हो जाने वाला वर्णसंकरादि दोषयुक्त होने के कारण पूर्व से ही पतित था ॥

२७२-जब कि अन्य स्वाभाविक वस्तुओंका स्वभाव बदलता नहीं दीखता (जैसे बहुत काल जल में रहने पर भी पत्थर का अग्नि नष्ट नहीं होता, काला कम्बल कैसा भी धोने पर जब सफेद नहीं हो सकता) तो युक्ति से विरुद्ध ब्राह्मणादि के स्वभाव का बदलना तुम क्यों मान लेते हो ? ॥

२७३-जबकि मनुजी अ० १० में साफ २ लिखते हैं कि—

पित्र्यंवाभजतेशीलं मातुर्वोभयमेववा ।
नकथंचनदुर्योनिः प्रकृतिंस्वांनियच्छति ॥

पिताका माताका वा दोनोंका कोई न कोई स्वभाव गुण वा चिन्ह सन्तान में ऐसा अवश्य आता है कि जिसकी ठीक२ परीक्षा की जाय तो माता पिताका पता अवश्य लग सकता है व्यभिचारादिकी रीति से वा धार्मिक शास्त्रोक्त रीति से पैदा हुआ सन्तान अपने कारण क

निकृष्टता वा उत्तमता को किसी प्रकार छिपा ही नहीं सकता। क्या इस के अनुसार भी तुम जाति से वर्ण नहीं मानोगे ॥

२७४-(अन्यदुप्तं जातमन्यदित्येतन्नोपपद्यते) जब मनुजी कहते हैं कि गेहूं बोने पर जौ वा जौ बोने पर गेहूँ पैदा हो जाय ऐसा हो नहीं सकता वा यों कहो कि लंगड़ा आम के बीज से खट्टुआ टिर्रा छोटा आम और खट्टुआ बीज से लंगड़ा आम पैदा हो नहीं सकता वा हंसराज चावल के बीज से साठी व साठी के बीज से हंसराज चावल पैदा हो नहीं सकते। तब दृष्टान्त और प्रत्यक्षादि प्रमाण तथा युक्ति से विरुद्ध तुम लोग क्यों मानते हो कि ब्राह्मणी ब्राह्मण माता पिता से हुआ सन्तान भी शूद्र हो सकता वा शूद्र से ब्राह्मण हो सकता है ॥

२७५-क्या आर्यसमाजी बनने वाले मूर्ख ब्राह्मणादि को तुमने सार्टीफिकट देकर गुण कर्मानुसार शूद्र बना दिया है। यदि नहीं बनाया तो तुम्हारा कहना मिथ्या क्यों न हुआ ?। तथा जिन २ ईसाई मुसलमान चमार भंगी आदि को तुमने शर्मा वर्मा बनाया है। क्या वे सब वेदादि शास्त्रोंके जानकार पूर्ण विद्वान् हो गये हैं। यदि नहीं हुए तो किन २ गुण कर्मों से ब्राह्मणादि हुए ॥

१०-भक्ष्याभक्ष्य विषय।

२७६-क्या तुम्हारे मत में खाने पीने के साथ धर्माधर्मका सम्बन्ध है ? वा नहीं। यदि है कहो तो भंगी चमार ईसाई मुसलमानादि को समाजी बनाके उन के हाथ का बना भोजन वा उनके साथ क्यों खाते हो क्या उनके शरीर की बनावट के स्वाभाविक अशुद्ध परमाणुओं को बदल के तुम शुद्ध कर सकते हो। जब नहीं बदल सकते तो उन के संसर्ग से तुम्हारा धर्म नष्ट क्यों न होगा। और यदि नहीं कहो तो क्या भंगी चमारादि को रसोइया बनालोगे ॥

२७७-क्या तुम्हारे मत में शूद्र तमोगुण प्रधान नहीं है। यदि है कहो तो उसके बनाये भोजन में संसर्ग दोषसे आनेवाले तमोगुण का निषेध किस युक्तिसे करोगे जब निषेध न कर पाया तो तुम भी तमोगुणी होने से कैसे बच जाओगे ॥

२७८–(आर्याधिष्ठिता वा शूद्राःसंस्कर्त्तारःस्युः) क्या ऐसा प्रमाण तुम वेद में दिखा देगे। जब वेद में इस का मूल ही नहीं ते वेदविरुद्ध क्यों नहीं मान लेते। अर्थात् हम इसको वेदविरुद्ध होने से अप्रमाण कहेंगे तब कैसे सत्य ठहराओगे। और रोटी दाल भात बनाना पकाना इस प्रमाण से कैसे सिद्ध करोगे॥

२७९–संस्कार नाम शुद्ध करने का है तब धोबी भी तो कपड़ा धोकर शुद्ध करता है। मट्टी के वर्तनों को कुम्हार बनाता, लुहार लोहे को अग्नि में धोंक २ कर शुद्ध करता, चांदी, सोना, कांसा, पीतल, तांबा इत्यादि का भी आर्याधिष्ठित सुवर्णकारादि संस्कार करते हैं। ऐसा अर्थ घट सकने पर रोटी बनाने का अर्थ कैसे कर सकोगे?॥

२८०–क्या सखरे निखरे के भेद को तुम नहीं मानते हो। क्या अपवित्र के स्पर्श से दोष लगना तुम नहीं मानते हो। यदि हां कहो तो स्मृतियोंमें कहा भक्ष्याभक्ष्य विचार माननेसे कैसे बचोगे। यदि नहीं कहो तो क्या कौवा, कुत्ता, भंगी, चमार आदि की छुई रोटी खालोगे॥

२८१–यदि मांस अभक्ष्य है तो स्वा० द० ने पहिले स० प्र० में उसका होम क्यों लिखा है?। और मांस किस युक्तिसे अशुद्ध है। यदि हिंसा दोष से कहो तो स्वा० द० ने कस्तूरी को अच्छा ग्राह्य क्यों लिखा?। क्या हिंसा के बिना कभी कस्तूरी मिल सकती है।

२८२–बाजारके घी दूध गुड़ चीनीकी भीतरी संभाव्य अशुद्धियोंके दृष्टान्त से क्या स्वा० द० ने स० प्र० में यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की है कि कोई घी दूध आदि को स्वयं शुद्ध रीति से बनाके वा सामने बनवाके खा सकता हो तो भी न खावे। अथवा क्या यह मतलब है कि अदृष्ट परोक्ष अशुद्धिसे सर्वथा न बच सके तो जान बूझ के वा सामने देखी हुई अशुद्धियों से भी न बचा करे। यदि ऐसा छोटा विचार नहीं है तो ऐसा दृष्टान्त क्यों लिखा है?॥

२८३–क्या मैला पड़ २ के अशुद्धिमें पैदा होने वाले आलू गोभी तरबूज खरबूजादि बुद्धि नाशक वस्तुओंका खाना समाजियोंने छोड़

दिया है। वा क्या इनके न खाने का उपदेश किया जाता है। यदि ऐसा नहीं करते तो क्या स० प्र० में लिखे (अमेध्यप्रभवाणि च) को समाजी लोग नहीं मानते हैं?॥

२८४-(अन्नमयंहिसोम्यमनः) छान्दोग्य में लिखा है कि अन्न का सारांश मन बनता है। यदि अशुद्ध पदार्थोंको खाया जाय तो क्या अशुद्ध मन नहीं बनेगा। और मन की मलिनता ही क्या सब पापों का कारण नहीं है तब अभक्ष्य के खाने पीने से धर्म का नाश क्यों नहीं मानते ?॥

२८५-यदि तुम्हारा यही मत है कि खाने पीने के पदार्थों से धर्म भ्रष्ट नहीं होता तो क्या विदेशी चीनीको भी भक्ष्य मानोगे और जब आपत्काल में भक्ष्याभक्ष्यादि की मर्यादा न रहने से हमारे शास्त्र भी धर्म हानि नहीं कहते तब वैसे दृष्टान्तोंसे तुम निर्विघ्न कालमें भक्ष्याभक्ष्य की मर्यादा क्यों छुड़ाना चाहते हो॥

११—पञ्चधापरीक्षा विषय।

२८६-ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव के और वेदों के अनुकूल हो वह सत्य और उस से विरुद्ध असत्य है। स्वा० द० का लिखा परीक्षा का यह पहिला नियम है सो क्या यह नियम वेदानुकूल है वा नहीं यदि है कहो तो दिखाओ किस वेदके किस मन्त्रसे यह नियम लिखा गया है ?। यदि नहीं कहो तो तुम्हारे वेद विरुद्ध नियम कौन मान लेगा। और वेदविरुद्धको तुम क्यों मानते हो इसका जवाब क्या है॥

२८७-ईश्वर के गुण सर्वज्ञत्वादि हैं उस से विरुद्ध तुम अल्पज्ञ क्यों हुए। ईश्वर के कर्म, संसार की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय हैं। उसके अनुकूल उत्पत्ति आदि तुम क्यों नहीं करके दिखाते, ईश्वर का स्वभाव सम निर्दोष अनिद्र, अस्वप्न है, उस से विरुद्ध तुम विषम दृष्टि वाले, काम क्रोधादि दोष युक्त और सोनेवाले क्यों हुए। क्या तुम्हारे वा संसार भरके गुण कर्म स्वभाव उक्त रीति से विरुद्ध नहीं हैं। जब हैं तो क्या सबको असत्य मानोगे ?॥

२८८-यह पांच प्रकार की परीक्षा ही जब वेदानुकूल तुम सिद्ध

नहीं कर सकते तो इस वेद विरुद्ध मिथ्या प्रलापका त्याग तुम क्यों नहीं करते ? ॥

२८९—दूसरी परीक्षा यह है कि सृष्टिक्रम के अनुकूल सत्य उस से विरुद्ध असत्य है। जैसे माता पिता के विना सन्तानका उत्पन्न होना। सृष्टि नाम उत्पत्तिका क्रम कहां से लोगे। यदि बीच से लेना कहो तो उसके लिये वेदका प्रमाण क्या है। यदि आदिसे कहो तो पहिले २ हुए मनुष्यों के माता पिता के नाम बताओ। यदि पहिले २ माता पिताके विना अनेक मनुष्य रच दिये गये तो उसी क्रम से विना माता पिता के सन्तानों का होना सृष्टिक्रमके अनुकूल क्यों नहीं हुआ। और माता पितासे होना सृष्टिक्रमके विरुद्ध क्यों नहीं है॥

२९०—(स० प्र० ८ समुल्लास) में स्वा० दयानन्द ने आदि सृष्टि के मनुष्य युवावस्था में हुए लिखे हैं। सो यह बात क्या सृष्टिक्रम के विरुद्ध तथा असम्भव नहीं है। क्या असम्भव काम ईश्वर कर सकता है। क्या तुम युवावस्था में उत्पन्न होते किन्हीं को अब दिखा दोगे ॥

२९१—सृष्टिक्रमसे तुम नंगे पैदा होते तब पीछे बड़े होनेपर सृष्टि क्रम से विरुद्ध कपड़े क्यों पहिनते हो। अर्थात् अब नंगे क्यों नहीं हो जाते। और पढ़ना भी सृष्टिक्रम नहीं है तो पीछे से पढ़ने में शिरपच्ची क्यों करते हो ॥

२९२—यदि सृष्टिक्रम का अभिप्राय यह मानते हो कि जैसा क्रम अब दीख पड़ता है कि बिना माता पिता के सन्तान नहीं होते वैसे पहिले भी कभी नहीं हुए। तो क्या तुम्हारे ही कहने से तुम्हारा खण्डन नहीं हो गया कि आदि सृष्टि में विना माता पिता के अनेक मनुष्य युवा २ पैदा हो गये थे। जब इसमें वेद का प्रमाण नहीं, न किसी अन्य ग्रन्थ का प्रमाण है तो स्वा० द० की युक्ति विरुद्ध मनगढ़न्त को मिथ्या क्यों नहीं मान लेते ॥

२९३—तीसरी परीक्षा का उदाहरण स्वा० द० ने ३ समुल्लासमें आप्त सत्यवादियों के उपदेशानुकूल सत्य और उससे विरुद्ध असत्य लिखा। सो क्या आप्त एक दयानन्द ही हुए वा अन्य भी कोई हुआ

है। जब कि सैकड़ों ऋषि महर्षि आप्त हुए तो उन सभीके उपदेश से विरुद्ध नया कल्पित मत स्वा० द० ने क्यों चलाया ॥

२६४—यदि एक ईश्वरको ही आप्त कहो और उसके उपदेश वेद के अनुकूल को सत्य मानो तो क्या उल्लुओं का पलवाना, स्थूल गुदा से अन्धे सापों का पकड़वाना, बकरे की चिकनाई का होम करना इत्यादि ईश्वर का उपदेश आप्तोक्त है ॥

२६५—चौथी परीक्षा आत्मा नाम अपने अनुकूल प्रतिकूल के तुल्य सबके सुख दुःखादिको समझना, क्या इससे विरुद्ध स्वा० द० ने संसार भर के मतों को बुरा नहीं कहा, क्या व्यासादि महायोगी सिद्धों को कसाई, उल्लू, गधा, पोप आदि कुवाच्य नहीं कहे। क्या ब्राह्मण जाति भर को दुःख नहीं पहुंचाया, क्या समाजी लोग ऐसे उपदेशों द्वारा वैदिकधर्म तथा उसके माननेवालोंका अपमान कर २ के दुःख नहीं देते हैं। तब क्या इसी चौथे नियम से विरुद्ध समाजियों के सब आचरण दुःखदायी नही हैं ? ॥

२६६—यदि कहा कि हम सत्य कहते हैं वह पहिले बुरा भी लगे तो भी परिणाम अच्छा होगा तो यह तुम्हारी भूल वा संसार को जान बूझ के धोखा देना है। जब युक्ति प्रमाण दोनों से विरुद्ध तुम्हारा कथन साढ़े पन्द्रह आना मिथ्या सिद्ध हो चुका तब सत्य का दम भरना कूंजड़ी के वेरों के तुल्य क्यों नहीं है।

२६७-पांचवीं परीक्षा प्रत्यक्षादि आठ प्रमाणों से स्वा० दयानन्द ने बताई है। सो जब आठ प्रमाण ही किसी शास्त्रमें नहीं मानेगये तब स्वा० द० का यह लिखना भी मिथ्या सिद्ध क्यों नहीं है ? ॥

२६८-न्यायदर्शन में चार प्रमाण हैं। ऐतिह्यादि चार पूर्वपक्ष में दिखाकर उनका उन्हीं चार में अन्तर्भाव उत्तर पक्षमें करदिया है आठ का खण्डन करके चार ही सिद्ध रक्खे हैं। योगसांख्यादि में उपमान को छोड़ के तीन ही प्रमाण माने हैं। तब स्वा० दयानन्द का आठ प्रमाण लिखना सब शास्त्रों से विरुद्ध मिथ्या कल्पना क्यों नहीं है ? ॥

२९९-स्वा० द० के कल्पित मत की सहस्रों बातें जब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध हो चुकीं मतङ्ग का ब्राह्मण होनादि जैसे प्रत्यक्ष मिथ्या निकला तब आठ प्रमाणों से विपरीत अपने मत को कहना मानना हठ दुराग्रह तथा पक्षपात नहीं तो क्या है ? ॥

१२-सृष्टि विषय ।

३००-तुम्हारे मतानुसार सब से पहिले सृष्टिमें कौन पैदा हुआ? यदि कहो कि ब्रह्मा जी से भी पहिले अग्नि वायु आदित्य अंगिरा नामक ऋषि उत्पन्न हुए जिन से ब्रह्माने वेद पढ़ा तो यह बताओ कि अग्नि आदि के मनुष्य देहधारी होने में क्या प्रमाण है । यदि कोई प्रमाण नहीं दिखा सकते तो स्वा० दयानन्द का यह कल्पित विचार मिथ्या क्यों नहीं है ॥

३०१-ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता० । इस श्रुति प्रमाण में आदि देव ब्रह्मा जी का सबसे पहिले होना साफ लिखा है उसको तुम क्यों नहीं मान लेते । सत्य बात मानने से हटते, मिथ्या को मानते और अपने को सत्यग्राही होने का दम भरते हो सो क्या यही धर्म है ? ॥

३०२-जब मनुस्मृति के आरम्भ में साफ लिखा है कि-

तस्मिन्जज्ञेस्वयंब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।

सब से पहिले ब्रह्माण्ड के बीच ब्रह्माजी पैदा हुए, इसीसे सब लोगोंके पितामह कहाये । इस प्रमाणको भी तुम क्यों नहीं मानते ।

३०३-जब बृहदारण्योपनिषद् में स्पष्ट लिखा है कि-

त्रीणिज्योतीᳬष्यजायन्त तेभ्यस्तप्तेभ्य-स्त्रयोवेदा अजायन्त, अग्नेर्ऋग्वेदइत्यादि ।

तीन ज्योति पैदा हुईं उन तपती हुईं तीन ज्योतियों से तीन वेद प्रकट हुए । यहां ज्योति कहनेसे अग्नि आदि मनुष्य कभी नहीं हो सकते । तब स्वा० द० का इन अग्नि आदि को देहधारी मनुष्य लिखना मिथ्या क्यों नहीं है ? ।

३०४-बृहदारण्य और मनु आदि के प्रमाणानुसार कि पुरुषरूप में भगवान् स्वयं प्रकट हुए फिर अपने ही देह से स्त्री पैदा की-वही

पत्ती हुई उन्हीं दोनोंसे सब संसार हुआ ऐसा क्यों नहीं मान लिया जाय। शास्त्रोक्त सत्य मानने से क्यों हटते हो?॥

३०५—तुम्हारे मतमें संसारका उपादान यदि ईश्वर नहीं किन्तु निमित्त मात्र ईश्वर है तो "जो पदार्थ विद्यासे जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है" ऐसा आ० स० के पहिले नियम में क्यों लिखा? क्या जीव और प्रकृति विद्या से नहीं जाने जाते? क्या आदि मूल कहने से ईश्वर जगत्का उपादान कारण होना सिद्ध नहीं होता। तब तीन अनादि कैसे होंगे?।

३०६—तीनके अनादि होनेमें वेदका प्रमाण कौन है। यदि (द्वा-सुपर्णा०) प्रमाण मानो तो बताओ उक्त मन्त्र में प्रकृति और जीव का अनादि होना किन पदों से सिद्ध है।

३०७-(अजामेकां०) श्वेताश्वतरोपनिषद् को प्रमाण कहो तो वह तुम्हारे मत में वेद नहीं इससे वेद प्रमाण न देने पर वह वेदवि-रुद्ध कहा जा सकता है। हमारे मतमें नित्यत्व के तुल्य प्रकृति और जीव का अजत्व सापेक्ष है तथा ईश्वर का निरपेक्ष है। (नित्यो नित्यानां०) श्रुतिमें तुमको भी जब जीवादि का नित्यत्व सापेक्ष मानने ही पड़ेगा और सापेक्ष नित्योंका अजत्व भी जब सापेक्ष ही सिद्ध है, तो वैसा क्यों नहीं मानते?॥

३०८-जब तुम एक संख्या से दो तीन आदि संख्याओं का आ-रम्भ मानते हो और एक संख्या का आरम्भ किसी से नहीं मानते तब बताओ कि तीन वस्तु अनादि होनेके पक्षानुसार तीन से संख्या का आरम्भ तुम क्यों नहीं मानते क्या इस युक्ति से तुम्हारा मत खण्डित नहीं हो गया? क्या तुम्हारे मत में तीन से पहिले कम एक वा दो संख्या हो सकती है?॥

३०९-क्या तुम वस्त्र में सूत को ओत प्रोत मानते हो वा नहीं, यदि मानते हो तो क्या सूत कभी वस्त्रका निमित्त कारण हो सकता है? अर्थात् कदापि नहीं। जैसे सर्व सम्मति से वस्त्र का उपादान सूत है वैसे ही क्या (स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु) इस वेद के

प्रमाण से संसार में ओत प्रोत ईश्वर संसार का उपादान कारण सिद्ध नहीं होता ? ।

३१०-क्या तुम निमित्त कारण को कार्यमें ओत प्रोत हुआ दिखा सकते हो ? यदि हां कहो तो आभूषण में सुनार को घड़े में कुम्हार को और वस्त्र में कोरी को ओत प्रोत हुआ क्यों नहीं दिखाते ? ॥

३११-(प्रकृतिश्च दृष्टान्तानुपरोधात्) क्या इस वेदान्त दर्शन के सूत्रसे संसारका उपादान कारण ईश्वर होना स्पष्ट सिद्ध नहीं है ? ।

३१२-(यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च०) क्या इस श्रुति में कहे मकरी के दृष्टान्तसे उत्पत्ति प्रलय में संसार का उपादान ईश्वर होना सिद्ध नहीं है? क्या मकरी अपने बनाये जालाका अभिन्न निमित्तोपादान कारण नहीं है ? दृष्टान्त सहित श्रुति प्रमाण से सिद्ध संसारका उपादान तुम ईश्वर को क्यों नहीं मान लेते ? ॥

६१३-(सन्मूलाः सोम्येमाः प्रजाः०) इस श्रुति में सत् पद का प्रकृति अर्थ किस प्रमाण से स्वा० द० ने किया है ? यदि सत् पद का अर्थ प्रकृति है तो सच्चिदानन्द में आप सत् पदका अर्थ प्रकृति क्यों नहीं है ? सत्पद को श्रुति में प्रकृति वाचक मानते और प्रकृति को संसारका मूल कहते हो तब स्वा० द० ने आ० स० के प्रथम नियममें सब का मूल परमेश्वर को क्यों कहा ? ॥

३१४-स्वा० द० ने स० प्र० ८ समु० में लिखा है कि "जो कारण है वह कार्य नहीं, और जिस समय कार्य है वह कारण नहीं,, जो मनुष्य अपने पुत्र का कारण है वही मनुष्य उसी समय अपने पिता का कार्य क्या नहीं है ? क्या तुम्हारे मत में पौत्र को उत्पन्न करते समय पुत्र अपने पिता का पुत्र नहीं रहता ? । क्या यहां एक ही समय एक ही वस्तु में कार्य कारण दोनों का होना सिद्ध नहीं है ? यदि सिद्ध है तो ऐसा युक्ति विरुद्ध लेख स्वा० द० ने क्यों लिखा ?॥

३१५-(स्पर्शवांश्चाणुर्नित्यश्च) इस वात्स्यायन भाष्य के अनुसार क्या परमाणुओं को तुम नित्य नहीं मानते ? यदि तुम्हारे मतमें परमाणु नित्य नहीं हैं तो न्यायदर्शन के सिद्धान्त से तुम्हारा मत विरुद्ध क्यों नहीं है ? ॥

३१६-यदि कहो कि परमाणु नित्य हैं तो स० प्र० ८ समु० में (प्रकृतेरुत्पन्नानां तत्त्वपरमाणूनां०) ऐसा क्यों लिखा ? क्या किसी अन्य कारण से उत्पन्न होने वाला वस्तु भी कभी नित्य हो सकता है ? क्या तुम लोग (उत्पत्तिधर्मकमनित्यम्) इस सिद्धान्त को नहीं मानते ? यदि नहीं कहो तो क्या तुम्हारा शरीर घर आदि विद्यमान वस्तु नित्य हैं ? ॥

३१७-पृथिव्यादि तत्वोंकी सृष्टि पहिले होने में वेद का प्रमाण बताओ । (ततो मनुष्या अजायन्त) यह यजुर्वेद में कहां लिखा है सो दिखाओ ? ।

३१८-सृष्टिकी आदि में निराकार ईश्वरसे एक साथ अनेक मनुष्यों का होना युक्ति से कैसे सिद्ध करोगे ? । एक साथ अनेक मनुष्य पैदा हुए ऐसा प्रमाण वेद में कहां है ? निराकार माता पितासे एक दम अनेक मनुष्योंका उत्पन्न होना सृष्टि क्रमके नियमसे विरुद्ध क्यों नहीं है ? क्या इस का युक्तियुक्त कुछ उत्तर दे सकते हो ? ।

३१९-युवावस्थामें अनेक स्त्री पुरुष एकसाथ निराकारसे हुए ऐसा किस वेद के किस मन्त्रमें लिखा है ? यदि नहीं लिखा तो वेद विरुद्ध तथा युक्तिविरुद्ध विचार को तुम क्यों मानते हो ? क्या छोटे से बड़े होने का क्रम नहीं मानोगे, यदि मानोगे तो सृष्टिक्रमसे तथा प्रमाण से विरुद्ध स्वा० द० के ऐसे भद्दे लेख पर पानी क्यों नहीं फेर देते ? ।

३२०-(मनोर्जातावञ्यतौषुक्च) इस पाणिनि सूत्रानुसार मनु के सन्तानों को तुम क्या मनुष्य मानते हो ? यदि नहीं मानते तो मनुष्यपद की सिद्धि व्याकरण से कैसे करोगे. और यदि मानते हो तो बताओ कि ब्रह्मा, विराट्, और मनु ये तीनों मनुष्य नहीं हो सकते तब वे कौन थे ? ॥

३२१-जब मनुष्य ईश्वरसे उत्पन्न हुए तो मनु के सन्तान न होने से जो मनुष्य नहीं थे वे सब किससे उत्पन्न हुए ? अग्नि वायु आदित्य अङ्गिरा भी तुम्हारे मतानुसार मनुष्य न होने से किस से उ-

त्पन्न हुए ?। यदि कहो कि मनु नाम ईश्वर से उत्पन्न मनुष्य कहाये तो पशु भी ईश्वर से हुए उन का नाम मनुष्य क्यों नहीं रक्खा गया ? ॥

३२२-जिस मनु शब्दसे मनुष्य शब्द बनता है वह कदापि ईश्वर का नाम हो नहीं सकता क्योंकि मनुस्मृति अ० १ के लेखानुसार ब्रह्मा जी के पौत्र मनु ने मनुष्यादि सृष्टि रची है इस से विरुद्ध मन माना तुम्हारा मत किस प्रकार सत्य ठहर सकता है ? ॥

३२३ (ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्०) मन्त्रके प्रमाणानुसार ईश्वर से ब्राह्मणादि वर्ण उत्पन्न होने सिद्ध हैं तव क्या उत्पत्ति से वर्णव्यवस्था सिद्ध नहीं हो गयी ? ऐसी दशा में गुण कर्मों से वर्णोंका परिवर्त्तन जो तुम मानते हो वह वेदविरुद्ध क्यों नहीं है ? ॥

३२४-तुम्हारे मतानुसार जो ईश्वर के मुख्य वा प्रशस्त गुणों से उत्पन्न हुआ वह ब्राह्मण है सो क्या ईश्वर के वे मुख्य गुण पीछे निकृष्ट वा गौण हो जाते हैं ?। यदि हो जाते हैं तो प्रमाण वताओ यदि नहीं होते तो वर्ण कैसे वदलेगा ? ।

३२५-स० प्र० ४ समु० में स्वा० द० ने लिखा है कि (ब्राह्मणोऽस्य०) मन्त्र में निराकार परमात्मा की अनुवृत्ति है सो तुम वताओ कि वह अनुवृत्ति कहां से आती है ?। जब निराकार वाचक वहां कोई शब्द नहीं तव ऐसा लिखना मिथ्या क्यों नहीं है सो वताओ ? ॥

३२६—स्वा० द० ने लिखा है कि "जो ईश्वर के मुखादि अंगों से ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उपादान मुख के तुल्य ब्राह्मण, वाहु के तुल्य लम्बे लकड़ जैसे क्षत्रिय, जङ्घाके तुल्य वैश्य और पग के तुल्य वनावट वाले शूद्र होने चाहिये,, इस पर तुम लोगों से पूछा जाता है कि अपने २ माता पिता के जिन अङ्गों से स्वा० द० जी और तुम लोग उत्पन्न हुए हो वैसी ही वनावट वाले तुम सब क्यों नहीं हुए ? क्या स्वा० द० की युक्ति इस से खण्डित नहीं होती ? ॥

३२७-मनुष्यों की आदि सृष्टि तिब्बत में हुई इस में किसी वेदमन्त्र का प्रमाण वताओ त्रिविष्टप् शब्द का अर्थ तिब्बत

है इसमें भी क्या प्रमाण है ?। ऐसी युक्ति प्रमाणशून्य बात स्वा० द० ने क्यों लिखी ?। क्या ऐसे लेखसे तुम्हारा मत युक्तिप्रमाणशून्य मन माना सिद्ध नहीं होता ? ॥

३२८—आर्य लोग तिब्बतसे यहां आये तबसे यह देश आयावर्त कहाया इसमें भी प्रमाण क्या है ?। ईश्वर ने आर्यो को तिब्बतमें क्यों नहीं किया ? जब यही देश सबसे श्रेष्ठ था और मनुष्योंमें आर्य तो अन्य देशमें आर्योंको उत्पन्न करना ईश्वरकी भूल क्यों नहीं है ?॥

३२९-ब्राह्मणादि चारों वर्णका नाम स्वा० द० ने आर्य लिखा है इस पर तुमसे पूंछा जाता है कि (उत शूद्रे उतार्ये)इस वेद वाक्य में आर्य से भिन्न शूद्र को क्यों लिखा ? जब आर्य कहने से शूद्र भी आ जाते तो शूद्रका आर्य न होना क्या वेद से सिद्ध नहीं है ? ॥

३३०-जब आर्यों की सृष्टि पहिले तिब्बतमें हुई और अनेक पीढ़ियों तक वहां ये लोग रहे तो तिब्बतका ही नाम आर्यावर्त्त होना चाहिये सो क्यों न हुआ ? इसके लिये प्रमाण वा युक्ति क्या है सो बताओ। तिब्बतमें उत्पन्न हो कर निवास करने पर भी जैसे उसका नाम आर्यावर्त्त न हुआ वैसे इसमें निवास करने से इस देश का भी नाम आर्यावर्त्त न होना चाहिये फिर क्यों हुआ ? ॥

१३--पुनर्विवाह नियोगवि०

३३१-स्त्री के पुनर्विवाहका खण्डन क्या स्वा० द० ने नहीं किया है। यदि किया है तो तुम लोग पुनर्विवाह क्यों कराते और मनाते हो। क्या सत्या० समु० ४ में पुनर्विवाह से पातिव्रत धर्म का नष्ट होना आदि कई दोष स्वा० द० ने नहीं दिखाये ? यदि दिखाये हैं तब आम तौर से पुनर्विवाह कराने की तुम्हारी चेष्टा स्वा० द० के मन्तव्य और लेख से विरुद्ध क्यों नहीं है ? ॥

३३२-अनेक प्रश्नोत्तरों द्वारा जब सिद्ध हो चुका है कि वेदके किसी भी मन्त्र से दूसरा पति करने की आज्ञा नहीं निकल सकती तब नियोग वा पुनर्विवाहका हल्ला करना वेद विरुद्ध क्यों नहीं है ? ॥

३३३-क्या आ० समाजियोंमें कोईभी उपदेशक अब भी तयार हो हो सकता है कि मूल वेद के अक्षरार्थ से सभा के वीच में सिद्ध कर दे कि ब्राह्मणादि द्विज स्त्री को द्वितीय पति करने की आज्ञा इस मन्त्रमें है।यदि कोई तयार हो तो उसके लिये हमारा यही नोटिस है॥

३३४-क्या आ० समाजियोंको वेदमें नियोगके होनेकी शंका अब तक वनी है। यदि वनी है तो निष्पक्ष धर्मात्मा सभ्यजनों की सभा में पेश करके इसका निर्णय क्यों नहीं कर लेते कि वेद में नियोग तथा पुनर्विवाह की लेशमात्र भी आज्ञा है वा नहीं हम इसका ब्रा० स० में पूरा २ निर्णय कर चुके हैं॥

३३५-किसी अधर्मसे भय रखने वाले समाजी से शपथ ली जाय कि पुनर्विवाह तथा नियोगके प्रचारसे क्या पातिव्रत धर्मका खण्डन नहीं होता ? । यदि होता है तो पतिव्रता धर्मनाशक नियोग तथा पुनर्विवाहका आदेश वेद में क्यों होता॥

३३६-क्या आ० समाजी लोग लेखों और व्याख्यानों के द्वारा पातिव्रत धर्म का प्रचार किया करते हैं। क्या यह पातिव्रत वेद शास्त्रोक्त सनातनधर्म नहीं है। क्या पातिव्रत धर्म का लोप हो जा ने पर देशका सुधार हो जायगा ?॥

३३७-पहिले से ही श्रुति स्मृतियोंका सुगन्ध वायु फैल जाने से भारतवासी द्विजों के मन में यह संस्कार क्या प्रवलता से ठसाठस नहीं भरगया है कि मेरी माता पत्नी, वहू वेटी,भगिनी पतिव्रता हो किसी अन्य पुरुष को कभी स्वप्नमें भी देखनेकी इच्छा न करे॥

३३८-क्या कोई भी द्विज पुरुष ऐसा है जो अपनी वहू वेटी भगिनी आदि को अन्य पुरुष से मेल करते वा पुनर्विवाह करते देख जानकर लज्जित वा दुःखी न हो ?॥

३३९-क्या मनुस्मृतिमें नहीं लिखा है कि (सकृत्कन्या प्रदीयते) कन्या एकवार दी जाती है। तव पुनर्विवाह में कन्यादान कौन करेगा ?। अथवा क्या कन्यादान कर्म ही न होगा। और मनुजी ने सकृत्कन्या का देना क्यों कहा क्या इस से पुनर्विवाहका साफ २ खण्डन नहीं है॥

३४०-सत्या० समु० ४ में स्वा० द० ने लिखा है कि जो ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करलें,, क्या यह लेख मिथ्या नहीं है। जो ब्रह्मचर्य न रख सके उस के लिये नियोग का आदेश क्या किसी प्रमाण से तुम दिखा सकते हो॥

३४१-राजा वेन के चलाये नियोग [जिसका मनु जीने विधान दिखाके खण्डन किया है] को करने वाले व्यासादि क्या जितेन्द्रिय तपस्वी नहीं थे। क्या कोई विषयी जन नियोग के नियम पर चल सकता है। जब ऐसा नहीं हो सकता तो स्वा० द० का लिखना सत्य कैसे ठहरेगा ?॥

३४२-लाखों विधवाओं का दुःख दिखा २ के जो तुम अन्योंको दुःखित करते हो उस के बदले विधवाओं में सती तपस्विनी होने, तथा अटल ब्रह्मचारिणी होने का प्रचार करते तो क्या यह धर्मानु· कूल वेदानुकूल काम न होता ?॥

३४३-क्या तुम कभी सिद्ध कर सकते हो कि विधवा विवाह वा नियोग का उपदेश तथा उद्योग विषयवासना को बढ़ाने वाला नहीं है। जिस देश में विषयवासना बढ़ती है क्या उस देश की उन्नति कभी हो सकती है॥

३४४-स्त्रियों की स्वतन्त्रता, लज्जा का त्याग, आपसकी प्रसन्नता से कन्या वर का विवाह, पुनर्विवाह, क्या इत्यादि वेदशास्त्र विरुद्ध बातों का प्रचार तुमने ईसाइयों के अनुकरणसे नहीं किया है। क्या ऐसे आचरणों से अङ्गरेजों की उन्नति मानते हो। क्या यह सब शास्त्रविरुद्ध नहीं है॥

३४५-जब अपने २ पूर्व कर्मानुसार सबको सुख दुःख मिलते हैं तो विधवा होने रूप दुःख भोग को तुम कैसे रोक सकते हो। धर्म-शास्त्रों के सिद्धान्त से सिद्ध है कि पति का अपमान परित्याग और अन्य पुरुष से व्यभिचार करना ही जन्मान्तर में विधवा होने का कारण है तब पुनर्विवाह करा २ के विधवाओं के शिर पर पाप का बोझा बढ़ाना क्यों नहीं है॥

३४६-यदि वास्तवमें देशोन्नति चाहते हो तो आनन्द मठ पु० में लिखे अनुसार स्त्री, पुरुषों को अटल ब्रह्मचारी रूप सन्तान बनके देशोन्नति करने का उपदेश क्यों नहीं करते। विषयवासनाके प्रचार से क्या कभी किसी जाति वा देशकी उन्नति हो सकती है?। कदापि नहीं॥

१४—तीर्थविषय।

३४७-क्या जल तथा स्थल विशेष तीर्थ नहीं हैं। यदि ऐसा है तो नदियोंके संगम पर वेदमें उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्ति क्यों लिखी है?। क्या इस से स्मृति पुराणादि के अनुसार त्रिवेणी का तीर्थ होना सिद्ध नहीं है। क्या (नदीनां च संगमे) का कुछ मन माना अर्थ हो सकता है?॥

३४८-यदि कहो कि तीर्थयात्रादि से पाप नहीं छूटते तो क्या प्रायश्चित्तोंसे भी पाप नहीं घटेंगे। ऐसा मानो तो प्रायश्चित्त करना व्यर्थ क्यों नहीं है। तब प्रायश्चित्त क्यों कहे हैं और तुम प्रायश्चित्त कराके क्यों शुद्ध करते हो?॥

३४९-क्या बाह्याभ्यन्तर शुद्धि के लिये जो २ उपाय शास्त्रकारों ने दिखाये हैं उन २ के करने से बाह्याभ्यन्तर शुद्धि नहीं होती? यदि ऐसा हो तो क्या स्नानादि सब व्यर्थ हैं यदि शुद्धि होती है तो उन्हीं उपायोंमें तीर्थयात्रा क्यों नहीं मान लेते?।

३५०-जब कि मनमें हुई ग्लानि का नाम पाप है तो मन की प्रसन्नता संतुष्ट होना, ग्लानि मिटना पाप की निवृत्ति क्यों नहीं है। क्या पुण्य पाप कोई स्थूल पदार्थ हैं कि जिन का छूटना न छूटना प्रत्यक्ष में करा सको॥

३५१-ऐसी दशा में तीर्थ व्रतादि से पाप नहीं छूटते यह कथन मिथ्या क्यों नहीं हुआ, इसके सत्य होने में क्या प्रमाण है। जब कोई प्रमाण नहीं तो हमारे प्रमाण क्यों नहीं मानते?॥

३५२-जब कि मनु आदि धर्मशास्त्रों में साफ लिखा है कि यदि यमराज के साथ तेरा कुछ विवाद नहीं यदि तू ठीक सत्य बोलता

है तो पाप निवृत्ति के लिये गंगा जी पर तथा कुरुक्षेत्र जाने की आवश्यकता नहीं है। क्या इस प्रमाण से सिद्ध नहीं कि गंगा स्नान से पाप कटते हैं॥

१५—देवता विषय।

३५३-क्या तुम्हारे मतमें परोक्ष देवता कोई नहीं है। यदि ऐसा है तो निरुक्त के दैवत काण्ड में और वेदान्त दर्शन में विग्रहवती देवता क्यों दिखाई है। क्या वेदके उदाहरणों से दिखाये हाथ पांव आदि अवयव वाले देव सत्य नहीं हैं॥

३५४-स्वा० द० ने शतपथ ब्राह्मण में लिखे (विद्वाꣳसोहिदेवाः) का क्या वेद विरुद्ध अर्थ नहीं किया है। जब शतपथ में वेदके मूल उशिजः पदका अर्थ लिखा है कि देवतालोग उशिज् नाम विद्वान् जन्म से ही होते हैं। जैसे पशु का बच्चा जन्म से ही जल में तर सकता और पक्षी विना सिखाया ही उड़ सकता है वैसे विना पढ़ेही देवता स्वभाव से ही विद्वान् होते हैं उनमें मूर्ख कोई नहीं होता। इस वेदार्थ को छिपाकर स्वा० द० ने संसार को धोखा क्यों दिया?। मन माना कल्पितार्थ क्यों किया?॥

३५५-जब (विद्वाꣳसोहिदेवाः) में देव विशेष्य और विद्वत् पद विशेषण है तब स्वा० द० ने विशेषणको किस प्रमाण से विशेष्य बनाया? ऐसे युक्ति प्रमाण से विरुद्ध स्वा० दयानन्दके मनमाने अर्थ पर तुम लोगों को घृणा क्यों नहीं होती?॥

३५६-जिनका दिन छः महीने का और छः मास की रात्रि सब वेदादि में लिखी है वे देवता हैं सो क्या विद्वान् मनुष्य के भी छः२ महीने के दिन रात होते हैं॥

३५७-छान्दोग्योपनिषद् में लिखा हैं कि देवता न खाते न पीते हैं किन्तु देख के ही तृप्त हो जाते हैं सो क्या समाजी मत में कोई ऐसे भी विद्वान् हैं जो कुछ भी खाते पीते न हों केवल देखकर ही तृप्त हो जाते हों?॥

३५८-दो पहर से पहिले देवतों को भोग देना शतपथ में लिखा है सो क्या विद्वान् मनुष्य रात्रि को नहीं खाते क्या समाजी मत के विद्वान् जैनी होते हैं ? ॥

१६—अवतार विषय ।

३५९-यदि तुम लोग ईश्वर का अवतार होना अर्थात् साकार होना नहीं मानते हो तो स्वा० दयानन्द ने आर्याभिविनय पुस्तक में (वायवायाहि०) मन्त्रार्थ करते हुये सोमरस क्या निराकार को ही पिला दिया है । क्या तुम्हारा निराकार सोमरस पी लेता है ? ॥

३६०-जब तुम्हारे मतमें अवतार नहीं होता तो शु० यजु० अ० ५ कं० १६ के भाष्यमें स्वा० द० ने क्यों दो हाथों वाले निराकारसे ही बहुत सा धन मांगा है ? क्या निराकार के दो हाथ हो सकते हैं ? । अथवा क्या दो हाथों वाला होने पर भी निराकार ही कहा माना जायगा । क्या वेदके ऐसे साफ २ प्रमाण से साकार अवतार होना प्रत्यक्ष सिद्ध नहीं है ॥

३६१-जब कि वेद के पुरुष सूक्त में मुख, दो बाहु दो जंघा दो पग, आंख, कान, नाभि, शिर, मन इत्यादि ईश्वर के अङ्ग साफ २ लिखे हैं सो क्या निराकार में मुखादि हो सकते हैं जब निराकार में अंग नहीं हो सकते तब उस का साकार अवतार क्यों नहीं मान लेते हो ॥

३६२-क्या (इदं विष्णुर्विचक्रमे०) इस वेद मन्त्र से विष्णु का त्रिविक्रमाऽवतार सिद्ध नहीं है । क्या (वेःपादविहरणे १।३।४१) पाणिनि सूत्रसे (विचक्रमे) क्रियामें आत्मनेपद नहीं हुआ है । क्या पादविहरण का अर्थ पग चलाना नहीं है । क्या यहां मन माना कुछ अर्थ कर सकते हो ? । जब इस मन्त्रसे विष्णु भगवान का वामनावतार प्रत्यक्ष सिद्ध है तो क्यों नहीं मानते हो ॥

३६३-जब सर्वत्र व्यापक रहता हुआ ही अग्नि नित्य २ असंख्य स्थानों में प्रज्वलित होने रूप से असंख्य अवतार लेता है और उस की व्यापकता में कुछ बाधा नहीं होती और किसी के बन्धन में भी नहीं आता । वैसे ही क्या व्यापक ईश्वर जगत् में प्रगट होना रूप

अवतार नहीं ले सकता? । क्या सर्वशक्तिमान् होनेपर भी उसमें स्वयं प्रगट होने की शक्ति नहीं है क्या वह समाजियों के वश में है ॥

३६४-क्या तुम कोई ऐसा दृष्टान्त दिखा सकते हो कि निराकार से साकार होने पर अमुक २ वस्तु में यह दोष आ गया। यदि ऐसा दृष्टान्त तुम्हारे समीप नहीं है तो ईश्वर का अवतार न मानना युक्ति से विरुद्ध क्यों नहीं है ॥

३६५-(छान्दोग्योपनिषदि-यएष आदित्ये पुरुषो दृश्यते आप्रणखात्सर्वएव सुवर्णः) आदित्य मण्डल में उपासकोंको उपासना की परिपक्व दशा में जो यह पुरुष दीखता है वह नख शिख पर्यन्त सभी सुवर्णमय ज्योतिःस्वरूप है। उसकी आंखें शिरके वाल डाढ़ी और मौछें सब सुवर्ण की जैसी चमक वाले हैं क्या यह कथन निराकार में घट सकता है। जब नहीं घटता तो तुम युक्ति प्रमाण सिद्ध उस के साकार रूप अनेक अवतार होना क्यों नहीं मान लेते हो ॥

३६६-क्या तुम को अबतक भी यह ज्ञात नहीं हुआ कि ईश्वरावतार के विरोध में कहीं तुम्हारी सब युक्तियां खण्डित हो चुकीं हैं। और प्रमाणों से भी अवतार होना सिद्ध हो चुका है तब निर्विवाद सत्य क्यों नहीं मान लेते हो ॥

३६७-जब तुम ईश्वर का प्रकट होना लिखते कहते मानते हो फिर अवतार शब्द से शत्रुता क्यों करते हो। अवतार पद ने तुम्हारी क्या हानि की है। जब प्रकट होना तथा अवतार होना साकार होना एक ही बात है तो व्यर्थ झगड़ा क्यों करते हो ॥

१७—मूर्त्ति पूजा विषय ।

३६८-स्वा० दयानन्द और उनके अनुयायी लोग जब किसी भी दिशा में मुख करके ईश्वरोपासना करें तब उनसे पूछा जाय कि तुम इस ओर क्यों मुख किये हो? जब वह सब ओर है तो तुम एक ओर मुख कर उसको खण्डित क्यों बनाते हो। यदि कहें कि सब दिशाओं में एक साथ मुख कर सकना असम्भव है इससे किसी एक खास दिशा में मुख करना ही पड़ेगा तो इसी प्रकार व्यापक वस्तु

की किसी एक वस्तु में ही पूजा उपासना बन सकती है। सर्वत्र पूजा उपासना हो सकना असम्भव है॥

३६९—यदि तुम कहो कि हम तो माता, पिता, गुरु, और अतिथि आदि चेतन मूर्त्तियोंकी पूजा उपासना करते मानते हैं और तुम जड़ मूर्त्तियोंकी पूजा करते हो। तो बताओ कि तुम मातादि की मूर्त्तियों की पूजा देव बुद्धि से करते मानते हो वा मनुष्य बुद्धि से पूजा करते मानते हो॥

३७०—तुम लोग कब और किस २ रीति से नित्य २ वा कभी २ किस नियमसे मातादिकी पूजा भक्ति करते हो क्या मातादिकी पूजा भक्ति करने का झूंठा हल्ला तुमने नहीं किया है। क्या कोई समाजी कभी कहीं मातादि की पूजा भक्ति वास्तव में करता है अर्थात् कदापि नहीं।

३७१—यदि मातादिकी मूर्त्तियों की पूजा तुम देव बुद्धि से करते मानते हो तो वेदोक्त देवता तुमने मान लिये और देवता न मानने का तुम्हारा मत खण्डित हुआ, यदि मनुष्य बुद्धिसे पूजा मानो तो पूज्य बुद्धि ही कैसे होगी?॥

३७२—जब (मातृदेवो भव। पितृदेवो भव) (मातापृथिव्यामूर्त्तिः पितामूर्त्तिः प्रजापतेः। मनु० अ०२) इत्यादि प्रमाणोंमें माता पितादि की देवभावना से पूजा भक्ति कही है तो क्या तुम वैसी ही ठीक मानलोगे। यदि मान लोगे तो अन्य में अन्यकी भावनासे होने वाली पाषाणादि मूर्त्तियों में व्यापक ईश्वरदेव की पूजा के विरोधी कैसे बनोगे? ॥

३७३—यदि माता पिता की पाञ्चभौतिक मूर्त्तियों में तुम्हारी देवभावना नहीं है तो श्रुतिस्मृति दोनों से विरुद्ध तुम्हारा कल्पित मनमाना मिथ्या सिद्धान्त क्यों नहीं ठहरेगा?। क्या ऊपर लिखी श्रुति स्मृति में देवभावना के लिये स्पष्ट आज्ञा नहीं लिखी वा नहीं कही है?। —

३७४—जब माता पितादि के काम क्रोध लोभादि दोष युक्त पांचभौतिक शरीरों [रुधिर मांस हड्डी चर्म वात पित्त कफ मल मूत्रादि

का संघट्टमात्र] में अदृष्ट चेतन के होने से पूज्य बुद्धि करते हो तो पाषाणादि सबमें व्यापक चेतन ईश्वरदेवके व्याप्त होनेसे काम क्रोधादि तथा मलमूत्रादि दोषोंसे रहित पत्थरादि की मूर्त्तियोंमें पूज्य बुद्धि करना अच्छा क्यों नहीं तथा बुरा क्यों है। क्या इसका ठीक सत्य २ उत्तर दे सकते हो।

३७५=क्या माता पितादि को पूजते समय तुम्हारे सामने त्वचा हड्डी मांसादि प्रत्यक्ष उपस्थित नहीं है। क्या पादस्पर्शादि में त्वचादिका ही स्पर्श नहीं होता। क्या कहीं चेतन का रूप प्रत्यक्ष अनुभव में आता है। यदि कहो कि प्रत्यक्ष में चेतन की प्रसन्नता दीखती है और पत्थरादि में प्रत्यक्ष कोई प्रसन्न नहीं होता तो बताओ कि क्या तुम चार्वाक के तुल्य केवल प्रत्यक्षवादी हो। मूर्त्तिमें व्यापक जिस ईश्वरदेव की पूजा हम करते हैं वह क्या प्रसन्न न होकर नाराज होगा। क्या वह हमारी भावना को नहीं जानता कि यह मेरी ही पूजा भक्ति करता है॥

३७६-यदि तुम कहते मानते हो कि मूर्त्तिपूजा जैन बौद्धोंसे चली है तो बड़ी भूल है। क्योंकि सृष्टि के आरम्भ से लेकर वेदादि सभी शास्त्रों में जब मूर्त्तिपूजा मौजूद है तो क्या यह पूजा तुम्हारे हटाने से हट सकती है॥

३७७-जब शु० यजु० अ० १२। ७० के भाष्य में स्वा० दयानन्द ने घी, मधु, दुग्धादि से सीता नामक पटेला की पूजा लिखी है सो क्या पटेला लकड़ी जड़ नहीं हैं?। उस पर घी मीठा शहत आदि स्वा० दयानन्द ने क्यों चढ़वाया है॥

३७८-वहां भी सीता का अर्थ हल जोतने से हुई लीक है जिसे कूंड़ कहते हैं क्या सीता का अर्थ पटेला लिखना स्वा० दयानन्द की प्रत्यक्ष भूल नहीं है। क्या तुम किसी प्रमाण से बता सकते हो कि सीता नाम पटेला का किस प्रकार से हुआ॥

३७९-मूर्त्तिमें देवता बुद्धि वा देव भावना करने को तुम अविद्या कहते हो तो क्या तुम पाञ्चभौतिक जड़ शरीरों में आत्म बुद्धि नहीं

करते क्या यह देहात्मवाद रूप स्थूल अविद्या नहीं है क्या तुम नहीं कहते मानते कि अमुक मनुष्य का जन्म हुआ वा मर गया। सो क्या आत्मा भी जन्मता मरता है वा स्थूल देह का नाश होता है॥

३८०–क्या तुम नहीं कहते मानते कि अमुक मनुष्य बड़ा शुद्ध है। सो क्या महा मलिन शरीर कभी शुद्ध हो सकता है। अशुचि शरीर में शुचि बुद्धि करना क्या योगदर्शन में अविद्याका एक उदाहरण नहीं दिया है॥

३८१–जब तुम्हारा कहना मानना स्वयं अविद्याग्रस्त है तो अन्यों को अविद्या का मिथ्या दोष लगाने से तुम लोगों को लज्जा संकोच क्यों नहीं होता ?॥

३८२–जब कि वेद के मर्मांश को लेकर मूर्त्ति पूजा का अभिप्राय यह है कि असत्प्रपञ्च मात्र संसार एक बाल भर सत्परमात्मा से खाली नहीं है। असत् में सत् को देखने जानने मानने का एकमात्र अवलम्ब मूर्त्ति पूजा है। ऐसे उत्तम आशय को तुमने क्या अबतक नहीं जान पाया है ?॥

३८३–सनातनधर्म का वेदानुकूल सिद्धान्त है कि जिस पत्थरादि पार्थिवांश की मूर्त्तियां बनती हैं वे पत्थरादि ईश्वर देवता नहीं हैं किन्तु उनमें से पत्थरादि भावना का छुड़ाना और ईश्वर देवता की भावना का स्थापन करना सिद्धान्त है। पत्थरादि की भावना असत् और ईश्वर देवता की भावना सत् है॥

३८४–जब वेदमें लिखा है कि (स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु) वह परमेश्वर सब प्रजा में ओत और प्रोत है कि जैसे मट्टी के सब घट पटादि विकारों में मट्टी ओत प्रोत है। मृद्विकारों में मट्टी बुद्धि सद् भावना और विकार बुद्धि असद् भावना है। असद् भावना ही मनुष्य को विषयों में फंसाती है और सद् भावना ईश्वर प्राप्ति का हेतु है। क्या तुम इस उत्तम अबाध्य विचार को मानते हो॥

३८५–मट्टीमें बूरा की भावना का दृष्टान्त तुम्हारा सत् में असद् भावना का उदाहरण हो सकता है जिस को सनातन धर्मी खण्डन करते हैं। इस से ऐसा कुतर्क वेद विरुद्ध क्या नहीं है॥

३८६-यदि बूरा में मिट्टी की भावना की जाय तो यह असत् में सद् भावना है क्योंकि ईख गुड़ आदि नाम रूप से मट्टी में से ही शक्कर चीनी बूरा निकाला है और अन्त में फिर भी मट्टी रूप हो जायगा। इस लिये तत्वज्ञान के विचार से बूरा अपनी दशा में भी मट्टी ही है। केवल व्यवहार कोटि में बूरा नाम रूप में परिणत हुई मट्टी खायी जाती है। इसी के अनुसार मूर्त्तियों में ईश्वर देवता की भावना को तुम लोग सद् भावना क्यों नहीं मान लेते हो॥

३८७-क्या केवल निराकार ईश्वर का कोई रूप कभी किसी की कल्पना में आ सकता है कि वह कैसा है। तब तुम्हीं बताओ कि उसका ध्यान कोई कैसे कर सकता है॥

३८८-जब तक न बताओ कि वह ऐसा है तब तक सर्वशक्त्वादि गुणों की कल्पना वा सत् चित् आनन्द रूप वा नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव आदि सभी शब्द संदेह कराने वाले और खण्डन के योग्य हैं क्या यह तुम्हारी समझ में अभी तक नहीं आया। यदि सत् नाम सर्वत्र विद्यमान है तो दिखाओ कहां है। वा अनुमान से सिद्ध करो कहां है?॥

३८९-यदि वेदोक्त रीति मान लो कि (आत्मैवेदमग्र आसीत्पुरुषविधः०) यह सब दृश्य जगत् उत्पत्ति से पहिले आत्मा ही था सो पुरुष नाम मनुष्य के जैसे आकार में था तो वही साकार आगया और साकार ही जाना जा सकता है तब उस की मूर्त्ति मानने से कैसे बचोगे॥

३९०-क्या कोई भी समझदार निराकार को साकार वा मूर्तिमान् माने विना बच सकता है। क्या अंगरेजादि सभी काल को विभु व्यापक नहीं मानते हैं और क्या वर्ष मास पक्ष आदि काल के विभाग नाम खंड नहीं हैं। और क्या इन संवत्सरादि खण्डों से विभु व्यापक काल के टुकड़े वास्तव में हो जाते हैं॥

३९१-यदि कालके टुकड़े-खण्ड हो जाते हैं तो फिर उसे तुम विभु क्यों मानते हो। क्या नैयायिकों ने काल को विभु नहीं माना

है। यदि और काल के खंड नहीं होते तो व्यापक ईश्वर अवतार लेने वा भिन्न २ मूर्तियों में पूजा जाने पर खंडित कैसे हो जायगा।

३६२-क्या व्यापक काल में संवत्सरादि खण्ड कल्पना [जो वेदोक्त है] हुए बिना संसार का कोई काम व्यापक निराकार काल से कदापि चल सकता है। यदि नहीं चल सकता तो व्यापक निराकार ईश्वर की पूजा उपासना कैसे हो सकेगी।

३६३- अखंड विभु काल के संवत्सरादि खंड हो जाने पर दिन रात के विभाग जानने के लिये क्या अङ्गरेजों ने सहस्रों प्रकार की काल की मूर्तियां घड़ी रूप नहीं बना डाली हैं क्या उन घड़ी रूप मूर्तियों से कालका सच्चा ज्ञान नहीं होता है कि अब इतने बजे हैं।

३६४-शब्दरूप गुण वा अकारादि वर्ण अनन्त आकाशमें व्यापक हैं। क्या शब्दों वा वर्णोंका वास्तव में कोई रूप वा रंग है अथवा कुछ लम्बाई चौड़ाई है। जब कि शब्दों वा वर्णों का कोई आकार नहीं तो व्यापक आकाश में शब्द भी निराकार व्यापक हुआ। सो क्या निराकार शब्द को जानने के लिये वर्ण पद वाक्यादि की कल्पना की नहीं गई है। क्या इस कल्पना के बिना कोई भी पुरुष व्यापक शब्द को किसी भी प्रकार से जान सकता है॥

३६५-क्या वर्ण पद वाक्यादिकी कल्पना से शब्दकी वास्तविक व्यापकता नष्ट हो गयी है वा उस में कुछ बाधा पड़ गयी है। जब वर्णादि की कल्पना हो जाने पर भी शब्द अपने स्वरूप में वैसा ही शुद्ध व्यापक निराकार बना है तो अवतारादि की साकार कल्पना क्या परमात्मा के व्यापक स्वरूप को बिगाड़ सकती है।

३६६-यदि व्यापक एकात्मक शब्द ब्रह्म में वर्ण पद वाक्यादिकी कल्पना न होती तो क्या कोई भी मनुष्य किसी भी प्रकार पण्डित विद्वान् हो सकता आधा पढ़ पढ़ा के कुछ भी ज्ञान प्राप्त कर सकता था॥

३६७-इसी प्रकार एक अखंड निराकार व्यापक ब्रह्म के अवतार न होते तो क्या कोई कुछ जान सकता था कि वह कौन कैसा और कहां है।

३९८-फिर वर्ण पद और वाक्यादि रूप में कल्पित शब्द ब्रह्मको सुगमता से जानने के लिये आकारादि वर्णों की आकृति कागज़ स्याही में बनायी कि जो आकारादि रूप में कल्पित शब्द ब्रह्म की मूर्त्तियां वा प्रतिमा हैं जिनसे वेदादि शास्त्रोंकी सैकड़ों पुस्तक मूर्ति रूप बनगयीं हैं। क्या तुम लोग इन पुस्तक रूप मूर्त्तियों को नहीं मानते हो।

३९९-जिन अकारादि वर्णोंकी बनाई हुई आकृतियोंको तुम स्वयं कागज़ों पर लिखते वा छापते छपवातेहो क्या तुम उनको अक्षर नहीं कहते मानते हो। सो क्या तुम्हारी अकल मारी गयी है, शोचो तो ये अक्षर कब हैं किन्तु क्षर हैं। जिसका नाश न हो वह अक्षर कहाता है। इन लिखे हुए वर्णों का सब कोई नाश कर सकता है तब ये अक्षर कैसे हुए।

४००-क्या तुमने ये पुस्तक रूप वेदादि शास्त्रों की मूर्त्तियां तथा अकारादि वर्णोंकी सहस्रों मूर्त्तियां कल्पितकी हुई अपने प्रयोजनार्थ नहीं मानी हुई हैं। जब असंख्य मूर्त्तियों को अपने प्रयोजनार्थ तुम मानते हो। और इन मूर्त्तियों को माने बिना व्यापक शब्दब्रह्म को कदापि नहीं जान सकते तो एक व्यापक परब्रह्मके अवतारों की मूर्त्तियोंको न माननेका झगड़ा क्यों उठाते हो॥

४०१-क्या तुम्हारा यही प्रयोजन तो नहीं है कि काल की घड़ी आदि रूप वा शब्दकी पुस्तकादि रूप मूर्त्तियोंके माने बिना हमारा संसारी काम नहीं चलता इससे मानने ही पड़ती हैं। पर ईश्वर से हमें क्या लेना है क्या हमें कुछ दे देगा। जैसा करेंगे वैसा भोगेंगे इसलिये निराकार २ कह लेते हैं कि जिससे कोई नास्तिक न कहे वा माने। यदि ऐसा विचार है तो क्या तुम पक्के नास्तिक सिद्ध नहीं हो गये?॥

४०२-(जीविकार्थेचापण्ये। अ० ५।३।९९) व्याकरण अष्टाध्यायीके इस सूत्र से मूर्त्ति पूजा सिद्ध है उसे क्यों नहीं मानते?॥

४०३-उक्त सूत्रका अर्थ यह हैं कि जो जीविका के लिये तो हो पर वेंची न जाय ऐसी प्रतिमा वा तस्वीर अर्थमें हुए कन् प्रत्ययका लुक् हो जावे। उदाहरण-शिवस्य प्रतिकृतिः शिवः। वासुदेवस्य प्रतिकृतिः वासुदेवः। रामस्य प्रतिकृतिः रामः। कृष्णस्य प्रतिकृतिः कृष्णः। तस्य प्रतिकृतिरूपस्य शिवस्यालयः शिवालयः। अर्थात् शिवकी प्रतिमाका नाम भी शिव ही है। उसे प्रतिमा रूप शिवका मन्दिर शिवालय कहाता है। ऐसे ही रामालय कृष्णालय भी सिद्ध हैं क्या इस व्याकरण सिद्ध बात को भी तुम लोग न मानोगे॥

४०४-जैसे शिवकी प्रतिमा का नाम शिव विष्णुकी प्रतिमा का नाम विष्णु होता है वैसे ही अकारादि वर्णोंकी कल्पित आकृति जो कागजादिमें लिखी छापी जाती हैं वे अक्षरोंकी प्रतिमा होनेसे अक्षर कहाती हैं। यदि निष्पक्ष बुद्धिसे ध्यान दोगे तो क्या अब भी मूर्त्ति पूजाके रहस्य को नहीं समझोगे॥

४०५-जयपुरादि नगरों में जो २ प्रतिमा कारीगरोंने जीविकार्थ बना २ कर वेंचने के लिये रक्खी हैं वे पाणिनि सूत्रानुसार अपण्य नहीं किन्तु पण्य हैं। इसलिये शिवादि की उस २ प्रतिमा का नाम बिकने समय तक शिवकः। रामकः। रहेगा। और जब किसी मन्दिर में प्रतिष्ठा हो जायगी तब पुजारियों की जीविकार्थ होने और वेंची न जाने से उनका नाम शिव, राम, कृष्ण आदि होगा॥

४०६-इसी लिये (अ० ५। ३। ९९) सूत्र पर महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनिने कहा है कि (यास्तु सम्प्रति पूजार्थास्तासु भविष्यति) जो मूर्त्तियां संप्रति पूजाके लिये मन्दिरोंमें स्थापित की जाती हैं वे जीविकार्थ हैं पर वेंची नहीं जातीं उनमें कन् प्रत्यय का लुक् होजावेगा। क्या इस प्रमाण से मूर्त्ति पूजा सिद्ध नहीं है?॥

४०७-(देवलकादीनां जीविकार्था देवप्रतिकृतय उच्यन्ते) पुजारी आदि की जीविकाके लिये स्थापित शिवादि देवों की मूर्त्तियां इस सूत्र में दिखायी हैं। इस काशिकाके लेख से भी क्या मूर्त्तिपूजा सिद्ध नहीं है॥

४०८-(शु० यजु० अ० १ । २०) पर शतपथ में प्राण प्रतिष्ठाका विचार भी स्पष्ट लिखा है जिसमें मन्त्र विनियोग साफ २ है। क्या मूर्त्तिपूजा के लिये इत्यादि प्रमाण तथा युक्तियां कम है। क्या इन से मूर्त्तिपूजा सम्यक् सिद्ध नहीं है॥

४०९—तुम लोग जो (न तस्य प्रतिमा अस्ति) इस वेद मन्त्र से यह सिद्ध करना चाहते हो कि उस ईश्वर की प्रतिमा नहीं है सो क्या अबतक नहीं जान पाया कि सनातनधर्मी लोग इसकी व्यवस्था क्या करते हैं सो क्या सर्वथा ठीक सत्य नहीं है॥

४१०—देखो तुम कहते मानते हो कि स्वा० दयानन्दके शरीरकी बनावट ऐसी ही थी कि जैसा यह फोटो है। तब यह बताओ कि फोटो पाञ्चभौतिक शरीरमें जो चेतन शक्ति थी उसका यह फोटो है॥

४११-जब कि वेदमन्त्र कहता है कि-

नैवस्त्रीनपुमानेष नचैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेनतेन सयुज्यते॥

यह चेतन जीव न स्त्री है न पुरुष है और न नपुंसक है किन्तु जैसी २ बनावट के शरीर को धारण करता है उस के सम्बन्ध से वैसा २ कहा जाता है। तो सिद्ध हुआ कि चेतन जीव का फोटो नहीं हो सकता। तब तुम क्यों कहते मानते हो कि यह फोटो स्वा० दयानन्द का है॥

४१२—जब कहते मानते हो कि स्वा० द० स्वर्ग को गये उन के भौतिक शरीर को जलाया गया तो सिद्ध है कि दयानन्द नाम जीव का था तब दयानन्द नामक जीव का फोटो क्यों कहते हो॥

४१३-(तस्य दयानन्दस्येयं प्रतिमा (फोटो) नास्ति) ऐसा क्यों नहीं मान लेते हो॥

४१४—यदि कहो कि वास्तव में चेतन शक्ति का फोटो नहीं होता तो भी वह जीव जिस २ शरीर में आता है उस २ में वैसा २ दीखने से वही चेतन जीव (त्वं स्त्री त्वं पुमानसि०) वेद प्रमाणानुसार स्त्री पुरुष आदि के उस २ नाम से कहा जाता है। इस से उस की प्रतिमा भी कह सकते हैं। तो वैसे ही अवतार के दिव्य

शरीरों में प्रकट हुए परमात्मा की प्रतिमा भी क्यों नहीं मान लेते हो ? ॥

४१५—जब कि वेदके (सहस्रस्य प्रतिमासि०) इत्यादि मन्त्रोंमें उन की प्रतिमा का होना स्वीकार किया गया तो ऐसा क्यों नहीं मान लेते कि निराकार की प्रतिमा का निषेध है और साकार अवतारों की प्रतिमा के होने का विधान है तो ठीक २ दोनों पक्ष बन जाते हैं ॥

४१६–अत्यन्त रूपवती स्त्रियों की तस्वीरों को तुम जैसे कामोद्बोधक मानते हुए कमरों में खर्च कर २ लगाते हो वैसे अवतारादि की तस्वीरों को भी क्या धर्म तथा ज्ञानादि की सहायक मानते और उनके दर्शन से धर्म ज्ञान की उन्नति करते हो ? ॥

४१७–जैसे काम के प्रसुप्त होने से बालक को मनोहारिणी तस्वीर से कामोद्बोध नहीं होता। वैसे ईश्वर भक्ति के न होने से तुम को मन्दिरादि में देवप्रतिमा के दर्शन से कुछ लाभ नहीं होता ऐसा क्यों नहीं मान लेते ? ॥

आर्यसमाज के दश नियम।

४१८–आर्य समाज के दश ही नियम क्यों रक्खे गये ? यदि इन को कोई न्यून वा अधिक करके दिखादे तो वे मान्य क्यों नहीं होंगे इसके लिये तुम्हारे पास युक्ति वा प्रमाण क्या है ? क्या ईसाइयोंके बाइबल में कहे दश नियमोंका अनुकरण यह नहीं तो अन्य क्या है?।

४१९–जब आ० समाजी मत के वेदानुकूल होने का दावा तुम करते हो तो तुम को दश नियमों का मूल वेद में क्यों नहीं दिखाना पड़ेगा ? ॥

४२०–यदि कहो कि वेद विरुद्ध सिद्ध न होने से (विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्) पू० मीमांसा सूत्रके अनुसार अनुमान कर लेंगे कि हमारे दश नियमों का मूल वेद में होगा। तब स्मृति पुराणादि के सैकड़ों लेख जिनको तुम वेद विरुद्ध कहते हो वे मीमांसा सूत्र के अनुसार वेदानुकूल क्यों नहीं हैं ? यदि वे सब वेदानुकूल नहीं तो तुम्हारे दशों नियम वेद विरुद्ध हो गये, इसका उत्तर क्या है ? ॥

४२१-तुम्हारे प्रथम नियम में कहा है कि सब सत्यविद्याओं का आदि मूल परमेश्वर है। तुम बताओ कि यहां सत्य शब्द किसकी व्यावृत्तिके लिये है ?। क्या कोई विद्या असत्य भी होती है यदि हां कहो तो दिखाओ कि वे कौन २ हैं, यदि न कहो तो प्रथम नियम से सत्य शब्द को क्यों नहीं निकाला गया ? ॥

४२२"जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं" ऐसा लिखने से ज्ञात होता है कि कोई पदार्थ अविद्या से भी जाने जाते होंगे। तब तुम बताओ कि जो अविद्या अज्ञान से जाने जाते हैं वे पदार्थ कौन हैं जिनका आदि मूल ईश्वर नहीं। ऐसी दशा में इस नियम की भाषा असंगत क्यों नहीं है ? ॥

४२३-इस पहिले नियम में आदि मूल कहने से जब उपादान कारण का बोध होता है तब ईश्वर को संसार का उपादान कहना क्या सिद्ध नहीं हो गया ? ॥

४२४- जब एक ईश्वर ही सब का आदि है तब उसका आदि अन्य कोई न होनेसे वही एक अनादि सिद्ध हो गया,क्योंकि प्रकृति और जीव का भी आदि मूल वही हुआ,तब प्रकृति और जीवका भी आदि ईश्वर का होना सिद्ध हो गया, क्योंकि प्रकृति और जीव भी विद्या से ही जाने जाते हैं अविद्या से नहीं तब तीन को अनादि मानने का तुम्हारे मत खण्डित क्यों न हुआ ?। अथवा परस्पर विरुद्ध होने से दोनों बातें असत्य क्यों नहीं ? ॥

४२५-द्वितीय नियमोक्त सच्चिदानन्द स्वरूप इत्यादि विशेषण यदि वेद मन्त्रों से नहीं दिखा सकते तो वेद विरुद्ध क्यों नहीं हैं? ॥

४२६-यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है तो अवतार धारण क्यों नहीं कर सकता ? यदि अवतार रूप से प्रकट नहीं हो सकता तो सर्व शक्तिमान् कैसे हुआ ?। क्या ईश्वर तुम्हारे अधिकार में है कि जिस काम को तुम न चाहते हो उसको वह तुमसे विरुद्ध हो के न करे ? ॥

४२७-यदि ईश्वर न्यायकारी है तो अन्यायी लोगोंको दण्ड क्यों

नहीं देता?क्या गोहिंसादि अन्याय नहीं है? यदि है तो सैकड़ों वर्ष से गोहिंसादि करने वालों का प्रध्वंसाभाव क्यों नहीं करता ? ॥

४२८-यदि ईश्वर अजन्मा है तो जन्म नहीं लेता होगा तब (सएवजातः स जनिष्यमाणः) इस वेदमें क्यों कहा कि वही जन्म लेता और वही लेगा-इस मन्त्रसे अजन्मा कहना विरुद्ध क्यों नहीं है?॥

४२९-तृतीय नियममें कहा है कि वेद सत्य विद्याओंका पुस्तक है, यदि यह सत्य है तो भगवद्गीता के बराबर भी वेदका मान्य अन्य मतानुयायियोंने अब तक क्यों नहीं किया ? ॥

४३०-जब वेद पढ़ने सुनने का निषेध शूद्र अतिशूद्रोंके लिये सब ऋषियों ने किया है, तब आर्यसमाज में सम्मिलित होने वाले सभी शूद्रादि को वेदाध्ययन का अधिकार देना ऋषि संप्रदाय से विरुद्ध क्यों नहीं है ? ॥

४३१-(उत शूद्रे उतार्ये०) इस मन्त्र के भाष्य में जब स्वा० दयानन्द ने शूद्र को आर्य नहीं माना, तब तृतीय नियम में वेद पढ़ना आर्यों का परम धर्म कहने से शूद्र को वेदाधिकार का निषेध क्यों नहीं हो गया ? ॥

४३२-आ० स० के चतुर्थ नियम में जो लिखा है कि-"सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिये" सो क्या आ० समाजी लोग स्वा० द० के असत्यको छोड़ने में उद्यत हैं ? क्या अब तक स्वा० द० की सैकड़ों बातें असत्य सिद्ध नहीं हो चुकीं ? ॥

४३३-जब स्वा० द० के असत्य को नहीं छोड़ते तो इस चौथे नियम पर हरताल क्यों नहीं लगाया जाता ? यदि अब तक किसी असत्य बात को छोड़ के किसी भी सत्य का ग्रहण समाजियों ने किया है तो बताओ किस २ असत्यको छोड़ के किस २ सत्य का ग्रहण किया है ? ॥

४३४-क्या इस चौथे नियम से यह सिद्ध नहीं होता कि इस नियम को बनाते समय स्वा० द० ने जो २ असत्य ग्रहण कर लिया था

उस को भविष्य में वे छुड़ा कर सत्य ग्रहण कराना चाहते थे। यदि ऐसा न मानो तो असत्य ग्रहण प्राप्त न होने पर उसके ग्रहण का निषेध कैसे होगा ?॥

४३५-जब स्वा० द० ने संस्कार विधि पु० में रात्रि को दश बजे विवाह विधान का नियम किया और उसी समय विवाह में सूर्य के दिखाने का मन्त्र लिखा तब क्या रात्रि में सूर्य का दर्शन असम्भव होने से सर्वथा मिथ्या नहीं है? क्या इस असत्य को समाजियों ने छोड़ दिया?॥

४३६-आर्यसमाज के पांचवें नियम में कहा है कि सब काम धर्मानुसार सत्यासत्य को विचार के करना चाहिये। सो बताना चाहिये कि वह धर्म क्या है। यदि शास्त्र प्रमाणको मानें तो (चोदना-लक्षणोऽर्थो धर्मः) इस पू० मीमांसासूत्र के अनुसार वेद विहित का नाम धर्म है। तब चमार भंगी आदि को जनेऊ पहना देना, उनके साथ खाना पीना, ब्राह्मण कन्याओं का विवाह क्षत्रियोंसे करा देना क्षत्रियों का संन्यासी होना इत्यादि काम क्यां वेद में लिखे हैं?। यदि मनमाने कामों का नाम धर्म है तो ईसाई मुसलमानादि के वा नास्तिकोंके कल्पित विचार भी धर्म क्यों नहीं हैं?॥

४३७-आ० समाज के छठे नियम में लिखा है कि-संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है। सो जब सत्यार्थ प्र०के अष्टम समुल्लास में स्वा० द० ने जगत् को असत्य जड़ और आनन्द रहित कहा है तथा जगत् और संसार दोनों एक होना सर्व सम्मत हैं, तब क्या असत्य जड़ और आनन्द रहित का उपकार सिद्ध नहीं हुआ?॥

४३८-जब भारत वर्षीय सभी मतोंकी अपेक्षा समाजी मतमें ही सब से अधिक असत्यहोना प्रत्यक्ष सिद्ध है तब असत्यका उपकार वास्तव में आ० समाज ने सब से अधिक किया है यह हम भी मानते हैं, यदि आ० समाजी इसे स्वीकार करें तो क्या मान लेंगे कि सत्यका उपकार हम नहीं करते ?॥

४३९-क्या जड़ संसार का उपकार करने से वह समाजियों पर संतुष्ट प्रसन्न होगा ? क्या यह अरण्य रोदन के तुल्य काम नहीं है ? जड़का उपकार करने से उसको सुख न हुआ तो उपकार ही क्या हुआ ? जब जड़ वस्तु कुछ नहीं जानता तो उसे दुःखसे बचाने का उपाय करना वा मानना मूर्खता क्यों नहीं है ? ॥

४४०-क्या आनन्द रहित वस्तुके उपकारका यह अभिप्राय नहीं है कि दुःखको बढ़ाना क्योंकि जब आनन्द रहितका उपकार किया जायगा तो जिसमें आनन्द वा सुख कुछ नहीं वैसा दुःख ही बढ़ेगा तब दुःख बढ़ाना आर्यसमाजका मुख्योद्देश्य सिद्ध क्यों नहीं हुआ ?

४४१-शारीरिक उन्नतिसे यदि यह अभिप्राय हो कि मनुष्य ऊंचे लम्बे होने लगें तो क्या आ० स० मनुष्य लम्बे होने लगे हैं ? यदि इन ४१ वर्ष में भी आ० समाजी मनुष्यों की शारीरिक उन्नति कुछ नहीं हुई, तो भविष्य में इन के शरीर अन्य मतावलम्बियों से ऊंचे होने लगेंगे ऐसी सम्भावना कैसे हो सकती है ? ॥

४४२-यदि शारीरिक उन्नति कहने से यह अभिप्राय हो कि आ० समाजियों के शरीरों की मुटाई अन्यों से बढ़जावे वा शरीरों में बल बढ़ जावे तो बताना चाहिये कि आ० समाजियों में अबतक अन्यों से कितना मोटापन वा बल बढ़ा है, यदि अभी तक कुछ भी अधिकता नहीं हुई तो यह छठा नियम व्यर्थ क्यों नहीं हुआ ? ॥

४४३-यदि आ० समाजी मत के बन्धन में न होने पर भी प्रोफैसर राममूर्त्ति आदि ने शारीरिक बल की उन्नति करली तो आ० समाजी मत का अड़ङ्गा लगाना निरर्थक क्यों नहीं है ? ॥

४४३-आत्मिक उन्नति कहने से क्या आत्मा पहिले से अधिक लम्बा चौड़ा वा भारी हो जाता है ? यदि आत्मा का बढ़ना घटना मानोगे तो उस को अनित्य नाश वाला मानना पड़ेगा तब (जीवो नित्यः । नायं हन्ति न हन्यते) इत्यादि प्रमाणों से विरोध होगा । और यदि जीवात्माको नित्य अविनाशी मानोगे तो बताओ कि उस की उन्नति क्या अथवा कैसे होगी ? ॥

४४५-जब से आर्यसमाजी मत चला है तभी से हिन्दु समाज में पहिले की अपेक्षा अनैक्य वा विरोध बढ़ गया है। जब मूर्त्तिपूजा श्राद्ध अवतार तीर्थादि का कठोरता के साथ खण्डन करने से हिन्दु समाज में परस्पर फूट आर्यसमाज के कारण ही बढ़गयी तब आ० समाजियों ने ही सामाजिक अवनति की, यह सिद्ध हो गया। ऐसी दशा में सामाजिक उन्नति करने का नियम बनानेसे क्या फल हुआ ?॥

४४६-जो आ० समाजी इस छठे नियमको मानते हैं उन्हींके एक छोटेसे समाजमें (जिसकी अब तक लाखोंकी ही संख्या है करोड़ों की भी नहीं उसमें) अबतक घासपार्टी, मांसपार्टी, आर्य बिरादरी-पार्टी बाबूपार्टी, पण्डितपार्टी इत्यादि अनेक अवान्तर मतभेद हो गये, क्या यह अनेक पार्टी होना सामाजिक अवनति नहीं है ? ॥

४४७-यद्यपि शैव वैष्णवादि संप्रदाय भेद होना भी हिन्दुसमाज की अवनति का कारण है तथापि इन संप्रदायों की कुछ व्यवस्था हो सकती है उस के द्वारा विरोध भी शान्त हो सकता है। परन्तु आ० समाजी मत चलने से जितना विरोध हिन्दु समाज में बढ़गया है उस से सामाजिक उन्नति का मूलोच्छेद हो जाने की सम्भावना है ऐसी दशा में आ० समाज ही सब से अधिक सामाजिक उन्नति का बाधक क्यों नहीं हुआ यही बताओ ॥

४४८-आ० समाज का सप्तम नियम है कि-"सब से प्रीतिपूर्वक यथायोग्य धर्मानुसार वर्त्तना चाहिये" क्या आ० समाजी इस नियम के अनुसार सब के साथ वर्त्ताव करते हैं ? । यदि हां कहो तो अन्य मतावलम्बी विद्वानोंका आदर समाजियोंके तुल्य कब करते हैं ?॥

४४९-जब कि यह नियम है कि स्वारथ लागि करैं सब प्रीती-तो अपने स्वार्थ के जो सहायक हैं उन्हीं के साथ प्रीतिपूर्वक वर्त्ताव प्रत्यक्ष देखा जाता है और जो जिस के स्वार्थ का विरोधी है, उस से प्रीतिपूर्वक कोई भी वर्त्ताव नहीं करता किन्तु उस के साथ विरोध

ही देखा जाता है, क्या समाजी लोग अपने मतके वा स्वार्थ के विरोधियों के साथ प्रीतिपूर्वक वर्त्ताव कर सकते हैं, जब ऐसा नहीं करते तब इस नियम का होना निरर्थक क्यों नहीं हुआ ? ॥

४५०—धर्मानुसार भी वर्त्ताव नहीं होता वा हो सकता क्योंकि निर्बल दरिद्र मनुष्यों को सभी लोग दबाते धमकाते हैं और बलवान् वा श्रीमान् से सभी दब जाते वा डरते हैं, निर्बल वा दरिद्र के थोड़े अनुचित का भी कोई सहन नहीं करता और श्रीमान् बलवानों के बड़े २ अनुचितों को भी सभी सह लेते हैं, सो क्या यह धर्मानुसार वर्त्ताव है, जब आ० समाजी भी निर्बलों का सहन नहीं करते तब क्षमा रूप धर्म का त्याग होनेसे अधर्मानुसार वर्त्ताव क्यों न हुआ ? फिर यह सप्तम नियम कैसे सफल हुआ ? क्योंकि नियम के होने न होने दोनों दशा में एक ही सा वर्त्ताव आ० समाजियों का ही दीखता है।

४५१—यद्यपि अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करना अच्छा है तथापि अविद्या और विद्या का यथार्थ विवेक न होने से अथवा कल्पित मनमाने मत के होने से आ० समाजियों की चेष्टा द्वारा अविद्या की वृद्धि और विद्या का नाश प्रत्यक्ष हुआ करता है। पृथिव्यादि अनित्य संसार को नित्य मानते हुए चेष्टा करना, अपवित्र शरीरों को शुद्ध कर लेने की चेष्टा करना, दुःखमय संसारी विषयों में सुख प्राप्ति का उपाय करना और शरीर इन्द्रिय तथा अन्तःकरणादि अनात्म पदार्थों को आत्मा समझना कि यही हम हैं क्या यह सब अविद्या की उन्नति नहीं है ? ।

४५२—आ० समाज का नवां नियम यह है कि प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट न रह कर सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये। यद्यपि ऐसा कोई करै तो अच्छा है तथापि इसके अभिप्राय से विरुद्ध आ० समाज का वर्त्ताव दीखता है। हिन्दु-समाज के अनेक श्राद्धादि वेदोक्त मन्तव्यों का खण्डन करके अवनति का उपाय आ० समाजी ही क्या नहीं कर रहे हैं ? क्या ब्राह्मणादि

पन के कामों के खण्डन हो जाने पर ब्राह्मणादि की उन्नति हो सकती है। क्या अपने सभी कामों के द्वारा आ० समाजी लोग अपने ही मत की उन्नति नहीं करते? क्या अन्यों को खण्डन रूप अवनति से संतुष्ट नहीं होते? तव इस नियम से भी विरुद्ध आ० समाजियों के काम सिद्ध क्यों नहीं हुए? ।

४५३—आ० समाज का दशवां नियम है कि—"सव मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियमों में सब स्वतन्त्र रहें" यहां सर्व हितकारी कहने से केवल आ० समाजी लिये जायं तो सर्व शब्द का अर्थ एकदेशी होगा और यदि सभी भारतवासी लिये जावें तो उन सबके हितकारी मूर्त्तिपूजा तीर्थ श्राद्धादि के नियम पालन में क्या आ० समाजी लोग अपने को परतन्त्र मानते हैं? जब ऐसा नहीं मानते तो आ० समाजियों का इस नियम से भी विरुद्ध वर्त्ताव होना सिद्ध क्यों नहीं हुआ?

१९—स्वमन्तव्यामन्तव्यविषय ।

४५४—स्वा० दया० ने ईश्वर को सच्चिदानन्दादि लक्षण युक्त कहा है। जब स्वा० द० के मत में जीव ईश्वर और प्रकृति ये तीनों स्वतन्त्रतया नित्य अविनाशी अनादि हैं तो ईश्वर के तुल्य प्रकृति और जीव की भी सत्ता अनन्तकाल स्थायिनी सिद्ध हो गयी, तव ईश्वर की सत्ता के साथ सर्वांश में सदृश जीव और प्रकृति भी सदात्मक ईश्वर क्यों नहीं हुए? इससे ईश्वर के सदात्मक लक्षणमें अतिव्याप्ति दोष क्या नहीं आ गया? क्या समाजी लोग इस दोष का निराकरण किसी भी युक्ति प्रमाण से कर सकते हैं?

४५५—यदि आ० समाजी लोग जीव और ईश्वरमें अल्प शक्ति सर्व शक्ति; अल्पज्ञ, सर्वज्ञ आदि होना ही भेद मानते हैं और वास्तव में दोनों ही की चेतनता समान है, तो चिदात्मकता में कुछ भेद न होने से जीव में अति व्याप्ति दोष आ गया जैसे एक लोटा भर जल में

और महासागर के अनन्त जल में जलत्व सामान्य एक है इसी कारण सर्व जलाशयस्थ जलों का एक ही लक्षण होगा वैसे ही जब चेतनत्व सामान्य दोनों का एकात्मक है, तब चिदात्मक जीव भी ईश्वर सिद्ध हो गया क्या इससे ईश्वर के लक्षण में व्यभिचार दोष नहीं है ?

४५६—स्वा० द० ने द्वितीय मन्तव्य में ११२७ ग्यारह सौ सत्ताईस व्याख्यान रूप वेदों की शाखा कहीं, और शाखा होने से उनको परतः प्रमाण माना, सो बताना चाहिये कि स्वा०द० ने जिनको स्वतः प्रमाण चार वेद माना है क्या वे शाखा नहीं हैं। जब शाकल, वाजसनेयी आदि नाम से प्रसिद्ध ये भी ऋगादि की शाखा हैं तब शाखा होने मात्र से यदि वेदत्व की हानि है तो स्वा० द० के मत में कोई वेद नहीं रहे ? ।

४५७—तीसरे मन्तव्य में स्वा० दयानन्द ने धर्म अधर्म का लक्षण किया सो जब ईश्वर भी धर्मात्मा का पक्ष करता तथा उसी को सुख का सामान देता है और अधर्मी का पक्ष नहीं करता तो यहां पक्षपात सहित होने से क्या ईश्वर का अधर्मी होना सिद्ध नहीं होता और धर्म अधर्म के लक्षण में अति व्याप्ति दोष क्यों सिद्ध नहीं हुआ ?

४५८—चौथे मन्तव्य में सुख दुःख ज्ञानादि गुण युक्त अल्पज्ञ होना जीव का लक्षण लिखा है सो क्या जीव में सुख दुःखादि संयोग संबन्ध से हैं वा समवाय सम्बन्ध से, यदि संयोग सम्बन्ध से कहो तो जब ज्ञान का भी वियोग हो जायगा तब क्या जीव को जड़ मानोगे ? और यदि समवाय सम्बन्ध से कहो तो मुक्ति के समय भी दुःख की निवृत्ति न होगी तब समाजी जीव मुक्ति में भी दुःखी ही रहेगा ॥

४५९—पांचवें मन्तव्य में जीवेश्वर का भेद स्वरूप से वा वैधर्म्य से दिखलाया है सो जब तक अग्नि जलादि का सा स्पष्ट वैधर्म्य न दिखलाया जाय तब तक सदात्मक चिदात्मक होने के अभेद से दोनों का एक होना क्यों सिद्ध नहीं है ?

४६०—छठे मन्तव्य में जीव ईश्वर प्रकृति तीनों को अनादि नित्य कहा सो (आत्मा वा इदमेकएवाग्र आसीन्नान्यत् किंचनमिषत्) इत्यादि वेद प्रमाण से जब एक ब्रह्म का ही अनादि नित्य होना सिद्ध है तब तीन को अनादि कहना वेद विरुद्ध क्यों नहीं है ?

४६१—एक से अनेक का होना युक्तिसिद्ध है, इसी कारण गणितशास्त्र में एक से संख्या का आरम्भ होता है, यदि तीन अनादि माने जायं तो तीन से संख्या का आरम्भ होना चाहिये। क्या एक से दो तीन आदि होने का नियम युक्ति सिद्ध नहीं ? क्या इस नियम का खण्डन हो सकता है ? जब नहीं हो सकता तो तीन अनादि कैसे होंगे ? ॥

४६२—सातवें मन्तव्य में लिखे अनुसार जीव ईश्वर और प्रकृति इन तीनों को यदि प्रवाह से अनादि माना जाय तो जैसे घटपटादि पदार्थ भी प्रवाह से अनादि होने पर भी नित्य नहीं हो सकते वैसे जीव ईश्वर तथा प्रकृति भी नित्य कैसे होंगे ? ॥

४६३—वास्तव में किसी भी वस्तु को प्रवाह से अनादि नहीं कह सकते क्योंकि जिसका आदि नाम कोई कारण न हो वह अनादि है और नदी का प्रवाह तत्सदृश होने से वही प्रवाह कहाता है किन्तु एक घड़ी पहिले जो प्रवाह था वह वह अब दूर पहुंचा वह अब नहीं है, इसी दृष्टान्त से जीव ईश्वर और प्रकृति यदि प्रवाह से अनादि हैं तो नदी प्रवाह के तुल्य नित्य नहीं हो सकते, क्या नदी प्रवाह के तुल्य जीव ईश्वर बदलते रहते हैं, क्या इस दृष्टान्त से जीव ईश्वर और प्रकृति ये तीनों अनित्य नहीं ठहरते ? ॥

४६४—नवम मन्तव्य में स्वा० द० ने ईश्वर के गुण कर्म सभावों की सफलता को सृष्टि का प्रयोजन लिखा है, क्या कोई आ० समाजी ऐसे प्रयोजन की सत्यता दिखाने के लिये वेद का प्रमाण दिखा सकता है ? ॥

४६५—(प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् । योगसू०) क्रीडार्थं सृष्टिरित्यन्ये भोगार्थमितिचापरे)

इत्यादि प्रमाणों से विरुद्ध स्वा० द० का कहा सृष्टि का प्रयोजन स्पष्ट है, तब युक्ति प्रमाण से शून्य मनमाना स्वा० द० का प्रयोजन वेदविरुद्ध क्यों नहीं है ! ॥

४६६—ग्यारहवें मन्तव्य में जब अविद्या के कारण बन्धे मान लिया तो विद्या के द्वारा अविद्यान्धकारका समूल नाश होजानेपर सदा के लिये जन्म मरणादि बन्ध का ध्वंस क्यों नहीं होगा ! ॥

४६७—बारहवें मन्तव्य में स्वा० द० ने जो मुक्ति का समय नियत परिमित किया है सो युक्ति प्रमाण से विरुद्ध क्यों नहीं है। अर्थात् अनावृत्तिः शब्दात् न स पुनरावर्त्तते) इत्यादि प्रमाण से स्पष्ट विरुद्ध क्यों नहीं है ? ॥

४६८—तेरहवें मन्तव्यमें स्वा० द० ने जो धर्मानुष्ठानादिको मुक्ति का साधन लिखा है सो (तमेवविदित्वाति मृत्युमेतिनान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय । ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः) इत्यादि प्रमाणों से विरुद्ध होने के कारण स्वा० द० का कथन वेद विरुद्ध क्यों नहीं है ? ॥

४६९—सोलहवें मन्तव्य में गुण कर्मों की योग्यता से वर्णाश्रम को मानना लिखा है। सो जब जन्मसे मरण पर्यन्त जो न बदले वही स्वभाव कहाता हैं और स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धःस्वेनकर्मणा) इत्यादि प्रमाण के अनुसार जन्म से ही आये गुण कर्म वर्णव्यवस्था के द्योतक हैं, तब जाति से वर्ण क्यों सिद्ध नहीं है ? ॥

४७०-बीसवें मन्तव्यमें विद्वानोंको देव और अविद्वानोंको असुर कहा है सो क्या कोई विद्वान् होकर दुराचारी हो तो भी देव कहावेगा तथा क्या सदाचारी अविद्वान् असुर कहावेगा ? । क्या किसी वेद में ऐसा लिखा है कि विद्वान् देव और अविद्वान् असुर हैं?।पूर्वाह्न में एक वार देवों का भोजन लिखा है क्या देव कहाने वाले समाजी विद्वान् रात्रि में कुछ नहीं खाते ? क्या अविद्वान् समाजी सब असुर नहीं हैं ? ॥

४७१-इक्कीसवें मन्तव्य में कहे अनुसार विद्वान् आदिकी पूजा ही देव पूजा है तो उनके चरणस्पर्श के समय त्वचा हड्डी मांस

रुधिरादि का स्पर्श वा पूजा क्यों नहीं? यदि वास्तव में जड़ तथा मलिन माता पितादिके शरीरकी पूजासे व्याप्त चेतनकी पूजा होजाती है तो पाषाणादि की निर्मल जड़ मूर्त्ति की पूजा से व्याप्त ईश्वर की पूजा क्यों नहीं हो सकती ? ॥

४७२–तेईसवें मन्तव्य में ऐतरेयादि ब्राह्मणों को पुराण कहा है सो जैसे स्मृति पद का वाच्यार्थ मन्वादि के बनाये धर्मशास्त्र लोक सिद्ध हैं वैसे ही ब्रह्मवैवर्त्तादि का पुराण होना लोकसिद्ध क्या नहीं है ? । यदि कोई कहै कि हम तो पृथिवी आकाश को मानते हैं, तब क्या तुम आकाश को पृथिवी मान लोगे ? । क्या ब्राह्मण-ग्रन्थों के आरम्भ समाप्ति में कहीं । अथ पुराणम् । वा–इति पुराणं समाप्तम् । ऐसा लिखा है ? । और क्या ब्रह्मवैवर्त्तादि की आरम्भ समाप्ति में पुराण ऐसा नहीं लिखा ? जब लिखा है तो प्रत्यक्ष से विरुद्ध क्यों मानते हो ? ॥

४७३–चौबीसवें मन्तव्य में सत्यभाषण सत्संगादि का नाम तीर्थ लिखा है । सो जब श्रुति स्मृति के सैकड़ों प्रमाणों से जल स्थलादि का नाम तीर्थ सिद्ध हो चुका तो स्वा० द० का कथन वेद विरुद्ध क्यों नहीं ? ॥

४७४–सत्ताईसवें मन्तव्य में षोडश संस्कारों द्वारा आत्मा की भी शुद्धि कही है सो क्या आत्मा भी शरीरादिके तुल्य अशुद्ध होता है ? क्या इसके लिये कोई श्रुति स्मृतिका प्रमाण है ? क्या अन्त्येष्टि को षोडश संस्कारोंमें किसी स्मृतिकार ने लिखा है ? । अन्त्येष्टि में शरीरका दाह हो जाने पर शुद्धिरूप संस्कार किसका होता है ?॥

४७५–अट्ठाईसवें मन्तव्य में स्वा० द० ने शिल्प, रसायन, पदार्थ विद्या आदि को यज्ञ कहा है, सो क्या कोई आ० समाजी शिल्पादि का यज्ञ होना किसी वेद के प्रमाण से सिद्ध कर देगा ? ।

४७६–श्रौतसूत्रों में (द्रव्यं देवता त्यागः) लिखा है कि पुरोडाशादि द्रव्य की किसी देवता के लिये आहुति देना यज्ञ कहाता है, क्या ऐसा ही लक्षण कोई समाजी शिल्पादिके यज्ञ होनेमें सिद्ध कर देगा ? । यदि शिल्पादि के यज्ञ होनेमें कोई प्रमाण नहीं है तो ऐसे वेदविरुद्ध लेख पर हरताल क्यों नहीं लगाया जाता ? ॥

४७७-तीसवें मन्तव्य में लिखा है कि आर्यों का सदा से निवास स्थान होने से इस देश का नाम आर्यावर्त्त है, इस पर प्रश्न यह है कि (उतशूद्रे उतार्ये) (विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो०) इन मन्त्रों से जब शूद्र और दस्यु मनुष्यों का आर्य होना निषिद्ध है तब शूद्रों का भी निवास इसी देश में होने से इस देशका नाम शूद्रावर्त्त क्यों नहीं रक्खा गया। तथा जब वैश्यों का नाम भी (अर्यः स्वामिवैश्ययोः) सूत्रके अनुसार अर्य है किन्तु वैश्य आर्य नहीं तो इस देश का नाम अर्यावर्त्त क्यों नहीं हुआ ? ॥

४७८-सैंतीसवें मन्तव्य में स्वा० द० ने प्रत्यक्षादि आठों प्रमाणों को मानना लिखा है, सो जब न्याय दर्शन में भी चार ही प्रत्यक्षादि प्रमाण माने हैं, ऐतिह्यादि का पूर्वपक्ष उठाके उत्तर पक्षमें ऐतिह्यादि को चार के अन्तर्गत मान लिया तब आठ प्रमाण कहना स्वा० द० का कथन कपोलकल्पित क्यों नहीं है ? ॥

४७९-उनतालीसवें मन्तव्य में स्वा० द० ने कहा है कि सत्यासत्य की परीक्षा पांच प्रकार से हो सकती है, सो यदि यह कहना ठीक मानो तो प्रमाण बताओ अन्यथा वेदविरुद्ध मानो ? ॥

४८०-चालीसवें मन्तव्यमें किया परोपकारका लक्षण प्रत्यक्षादि प्रमाणों से विरुद्ध है क्योंकि भूखे को अन्न देना प्यासे को जल देना परोपकार अवश्य है, तब क्या इस से दुराचार छूट जाते और अन्नादि मिलने से कोई सदाचारी हो सकता है ? ॥

४८१-स्वा० द० ने ४१ वें मन्तव्य में जीवको अपने कर्मों में स्वतन्त्र कहा है, सो (सपत्रसाधुकर्म कारयति) इत्यादि श्रुति प्रमाण से विरुद्ध क्यों नहीं है ? ॥

४८२-यदि सदाचारादि काम करनेमें ईश्वर स्वतन्त्र है तो क्या अवतार धारण करने में परतन्त्र है ? क्या आ० समाजी लोग अवतार लेने से ईश्वर को रोक सकते हैं ? ॥

४८३-बयालीसवें मन्तव्य में स्वा० द० ने सुख विशेष भोग का नाम स्वर्ग कहा है, सो क्या स्वर्ग आख्यात क्रिया वाचक पद है ? यदि क्रिया वाचक है तो जब कहो कि स्वा० द० का स्वर्गवास हो गया तब इस का अर्थ क्या होगा ? ॥

४८४-किसी शब्दका अर्थ जानने के लिये क्या लोकप्रसिद्ध और कोश व्याकरणादिका प्रमाण सर्व सम्मत नहीं है ?। जब कोशादि के प्रमाण से स्थान विशेष का स्वर्ग नाम होना सिद्ध है तब स्वा० द०का प्रमाण वेद विरुद्ध कपोलकल्पित कथन कोई कैसे मान लेगा ?। स्वर्ग नाम सुख विशेष भोग का है तो वेद का प्रमाण दिखाओ ? ॥

४८५-तेंतालीसवें मन्तव्य में स्वा० द० ने दुःख विशेष भोग का नाम नरक लिखा है परन्तु मन्वादि धर्मशास्त्रोंमें असिपत्र वनादि नामक इक्कीस प्रकार के नरक लिखे हैं वे क्या असिपत्रवनादि स्थान विशेष शब्दों के अर्थ से सिद्ध नहीं हैं ? ॥

४८६-छालीसवें मन्तव्य में स्वा० द० ने विवाह का वाच्यार्थ नियम पूर्वक पाणिग्रहण करना कहा है सो वह नियम क्या है, और कौन किस का हाथ पकड़े ? यदि कोई मनुष्य किसी स्त्री का किसी नियम से हाथ पकड़े तो क्या वह भी विवाह कहावेगा ? ॥

४८७-यदि विवाह शब्द शास्त्रोक्त कर्म विशेष का नाम वेदादि के प्रमाणों से सिद्ध है तो वही लक्षण स्वा० द० ने क्यों नहीं मान लिया ?। क्या श्रुति स्मृति के अनुकूल विवाह मान लेने में स्वा० द० की कुछ हानि है ? ॥

४८८-ईसाई मुसलमान तथा नास्तिकादि मनुष्यों के वेदादि शास्त्रों से विरुद्ध स्त्री पुरुष के सम्बन्ध भी क्या विवाह कहावेंगे। यदि वे भी विवाह हैं तो शास्त्रोक्त लक्षण उन में कैसे घटेगा ? ॥

४८९-सैंतालीसवें मन्तव्य में स्वा० द० ने नियोगका प्रतिपादन किया है। सो जब नियोग का वेद में कुछ भी प्रमाण नहीं है तब ऐसे वेद विरुद्ध नियोग को क्यों मानते हैं ? ॥

४९०-क्या ७५) रु० पारितोषिक देने का नोटिस देने के समय सम्पादक वेदप्रकाश ने नियोगके लिये वेदका कोई ऐसा प्रमाण दिया था कि जिससे नियोग सिद्ध हो सकता ?॥

४९१-क्या वेद के जितने प्रमाण आ० समाजी लोगों ने नियोग सिद्धि के लिये दिये थे उनका ठीक २ अर्थ करके यह सिद्ध नहीं कर दिया गया कि वास्तव में नियोग का कहीं नाम भी नहीं है?॥

४६२—(उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोक०) मन्त्रके अर्थ पर स्वा० द० के घृणित विचार क्या सबको ज्ञान नहीं होगये ! । क्या मृत मुर्दा पति के उठाने से पहिले ही कोई समाजी अपनी भगिनी पुत्री वा पुत्र वधू आदि से कह सकता वा कहा करता है कि तू इस पड़े हुए मृत पति की आशा छोड़ के इन शोक सहानुभूतिके लिये आये शेष पुरुषों में से किसीको अपना पतिकर ले क्या ऐसा लिखना महा असभ्यता का घृणित काम नहीं है ! ॥

४६३—क्या (तामनेनविधानेन०) इस मनुके श्लोकका पूर्वार्द्ध वेद विरुद्ध नियोग सिद्धि के लिये स्वा० द० ने नहीं चुराया ! क्या वह चोरी खुल नहीं गयी ! ॥

४६४—क्या मनु जी ने नियोग को पशुधर्म नहीं कहा है ! ॥

४६५—यदि तुम नियोग के खण्डनको प्रक्षिप्त कहो तो हम नियोग के विधान को प्रक्षिप्त क्यों नहीं कह सकते ! ॥

४६६—क्या नियोग के विधानसे पातिव्रत धर्मका खण्डन नहीं होता क्या पातिव्रत सनातन धर्म नहीं है ! ॥

४६७—जब मनुजी ने स्पष्ट कह दिया है कि पतिके मरने पर अन्य पुरुष का नाम भी न लेवे तब क्या ऐसे कथन से नियोग तथा पुनर्विवाह का स्पष्ट निषेध नहीं है ? ॥

४६८—उनचाशवें मन्तव्य में स्वा० द० ने अपने सामर्थ्य से उपरान्त प्रार्थना करना कहा है इस पर वक्तव्य यह है कि एक मनुष्य निर्धन मूर्ख रोगी अशक्त होनेसे सर्वथा असमर्थ है, जब उसमें कुछ सामर्थ्य ही नहीं तब क्या वह ईश्वर से प्रार्थना न करे ? ॥

४६९—यदि प्रार्थनासे दुःख निवृत्त होजाय तो दुःख फलवाला कर्म भोगे बिना छूट जाने का दोष क्यों नहीं होगा ? ॥

५००—इक्यावनवें मन्तव्य में सगुण निर्गुण की स्तुति प्रार्थनोपासना का भेद लिखा है । सो जब निराकार विभु निरीह ब्रह्म में किसी भी युक्ति से किसी गुण का आरोप हो ही नहीं सकता तब उसको सगुण मानना युक्ति से विरुद्ध क्यों नहीं है ? ॥

५०१—यदि ईश्वर सृष्टि कर्त्ता न्यायकारी दयालु आदि है ऐसा कहो तो ये कोई भी गुण कर्म निराकार में नहीं हो सकते, इसीलिये

वैशेषिक शास्त्रमें आत्मा को निष्क्रिय माना है, क्या सृष्टि रचनादि क्रिया नहीं हैं। क्या निराकार भी कभी सगुण हो सकता है? अथवा सगुण वस्तु कभी निराकार हो सकता है? ऐसे अहोरात्रवत् परस्पर विरुद्ध दो गुणोंको एक ईश्वरमें तुम लोग क्यों मानतेहो?॥

२०–सत्यार्थप्रकाश समीक्षा विषय।

५०२–सत्यार्थप्रकाश द्वितीयावृत्ति पृष्ठ ७१ में स्वा० द० ने लिखा है कि "सब भाषा ग्रन्थ कपोलकल्पित मिथ्या हैं,, सो क्या स्वा० द० का बनाया सत्यार्थप्रकाश भाषा में नहीं है? यदि है तो वह भी मिथ्या क्यों नहीं हुआ?।

५०३–उसी आवृत्ति के पृष्ठ ७२ में लिखा है कि "असत्यमिश्रं सत्यं दूरतस्त्याज्यमिति,' असत्यसे युक्त ग्रन्थस्थ सत्य को भी वैसे ही छोड़ देना चाहिये जैसे विषयुक्त अन्न को,, सो क्या तुम्हारे सत्यार्थ प्रकाशमें सैकड़ों ही मिथ्या बातें नहीं लिखीं हैं? ऐसी दशा में सत्यार्थप्रकाश को तुम गंगाप्रवाह क्यों नहीं कर देते?।

५०४–उक्त आवृत्ति पृ० ७५ में "देखो वेद में कन्याओं के पढ़ने का प्रमाण,, इस के आगे "ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्,, अथर्ववेद का यह वचन लिखा है, पर इस मन्त्रार्द्ध से कन्याओंको वेद पढ़ाना कहां से सिद्ध हो गया?।

५०५–यदि कहो कि "ब्रह्मचर्येण,, पद के आ जाने से ब्रह्मचर्यके साथ अध्ययन भी ले लिया जायगा तो इसी मन्त्रके आगे एक मन्त्र में "अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति,, इस मन्त्र में बैल और घोड़े के लिये भी ब्रह्मचारी शब्द आ जाने से क्या उन्हें भी कौपीन बंधवा कर वेद पढ़ाना प्रारम्भ कर दोगे?।

५०६–उक्त आवृत्ति के पृष्ठ ९३ वें में लिखा है कि विवाह के निमित्त लड़के लड़कियों का फोटो लिया जावे, जन्म भर का इतिहास कन्या वरोंके हाथ में दिया जावे, आपसमें गुप्त व्यवहार पूंछा जावे और जिस दिन कन्या रजस्वला हो कर शुद्ध हो और जिस दिन ऋतुदान देना योग्य समझें उसी दिन मध्य रात्रि या दश बजे सब के सामने पाणिग्रहण पूर्वक विवाह की विधि को पूरा करके

एकान्त सेवन (हम विस्तर) हों,, । क्या ऐसे घृणित मनमाने विचारों का विधान वेदमें कहीं है ? यदि है तो इसका प्रमाण दो?।

५०७-यदि वेद प्रमाण नहीं है और अन्य ही किसी स्मृति या ऋषिको ऐसी आज्ञा है तो वही प्रमाण उपस्थित करो ? यह भी वत लाओ कि क्या वर्त्तमान आर्यसमाजियों के यहां इसी विधि से विवाह होते हैं ? और वर कन्या मध्य रात्रि में सब के सामने हम विस्तर होते हैं ? ।

५०८-पृष्ठ ६४ वे में लिखा है कि "सन्तान के कान में पिता 'वेदोऽसीति, अर्थात् तेरा नाम वेद है सुना कर और घी तथा शहत का लेकर सोने की शलाका से जीभ पर ओ३म् अक्षर लिख कर मधु और घृत को उसी शलाका से चटवावे,, क्या हाल का उत्पन्न हुआ वालक पिता की वात को सुन लेगा यदि नहीं सुनेगा तो इस पागलपन के करने की क्या जरूरत है । और क्या इसके लिये कोई वेद का प्रमाण भी है ? ।

५०९-पृष्ठ २५८ में लिखा है कि अत्युष्ण देश हो तो शिखा सहित छेदन करा देना चाहिये फिर पृष्ठ ३७१ में लिखा है कि यज्ञोपवीत और शिखा को छोड़ ईसाई मुसलमानों के सदृश वन वैठना यह भी व्यर्थ है । इन दोनों परस्पर विरुद्ध लेखोंमें कौन सत्य है ?।

५१०-पृष्ठ ३३३ में लिखा है कि " हिरण्याक्ष पृथ्वी को चटाई के समान लपेट सिराने धर सो गया इत्यादि भागवत में लिखा है" क्या कोई आर्यसमाजी भागवत में ऐसा दिखला सकता है ? यदि नहीं दिखला सकता तो ऐसे मिथ्या ग्रंथ को अग्नि समर्पण क्यों नहीं किया जाता ? ।

५११-पृष्ठ ३३३ में भागवत का हवाला देकर लिखा है कि हिरण्यकशिपुने लोहे का एक खम्भा अग्नि में तपाया और प्रह्लाद उसे देखकर डर गया तव भगवान् ने उसपर चींटियां चला दीं उसे देख कर प्रह्लाद ने खम्भेको जा पकड़ा " भागवतके नामसे ऐसा मिथ्या लिखने से स्वा० दयानन्द को लज्जा क्यों नहीं आई ! क्या कोई समाजी उपर्युक्त लेख भागवत में दिखाने के लिये तैयार है ?।

विषय-सूची।

—○*○—

* पुस्तकोंका सूचीपत्र *

१-ब्राह्मणसर्वस्व मासिक पत्र पिछले भाग प्रति भागका १॥) एक साथ सब भाग लेने पर ११) अष्टादश स्मृति हिन्दी भाषाटीका सहित ३) भगवद्गीता भा० टी० २॥) याज्ञवल्क्य स्मृति सटीक १) षोडशसंस्कारविधि २) पाराशरस्मृति ॥) अष्टाध्यायी पाणिनीय सटीक सोदाहरण २) गणरत्नमहोदधि २) ईशोपनिषद् सभाष्य ≶) केनोपनिषद् सभाष्य ≶) प्रश्नोपनिषद् सभाष्य ॥) श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य ॥।) उपनिषद्का उपदेश प्रथम खण्ड १।) द्वितीय खण्ड १) सतीधर्मसंग्रह ।) पतिव्रतामाहात्म्य ≶)॥ भर्तृहरि नीतिशतक भा० टी० ≶) भर्तृहरि वैराग्यशतक ≶) भर्तृहरि श्रृंगारशतक ≶) इष्टि-संग्रह ॥) मानवगृह्यसूत्र ॥) आपस्तम्बगृह्यसूत्र ।) यज्ञपरिभाषा-सूत्र संग्रह ॥) पञ्चमहायज्ञविधि ≈) भोजनविधि)॥ सन्ध्योपासनविधि)॥ कातीयतर्पणप्रयोग)॥ नित्यहवनविधि)॥ वेदसार शिवस्तोत्र)। सनातनहिन्दूधर्मव्याख्यान दर्पण (पूर्वार्द्ध) २) दयानन्दमतविद्रावण ।) सत्यार्थप्रकाशसमीक्षा ≈) आश्वमेधिकमन्त्रमीमांसा ≈) पञ्चकन्याचरित्र -) विधवाविवाह मीमांसा ।≈) मूर्त्तिपूजा मण्डन ≈) ठनठन बाबू ≈) दयानन्दकी विद्वत्ता)॥ नमस्ते मीमांसा)॥ सनातनधर्मप्रश्नोत्तरावली)॥ प्रेमरत्न -)॥ गोरत्न -) भजनविनोद)॥ रम्भाशुकसम्वाद सचित्र ≈) पुराण कर्त्तृमीमांसा)॥ जैनास्तिकत्वविचार)॥ दुनियां की रीति)। गीतासंग्रह ।≈) योगसार ।) विधवोद्वाहनिषेध)। सुमनवाटिका ≈) रामगीता ≈) रामहृदय ≈) आदर्शरमणी ≶) पूजाफूल ॥) दामिनी ≈) हिन्दूशब्दमीमांसा)॥। विधवाधर्ममीमांसा)॥। अपूर्वनौका ≶) शरणवत्सलहम्मीर ≈)

उपरोक्त-पुस्तकें मिलने का पता—

मैनेजर—ब्रह्मप्रेस इटावा ।